मति सोवत तें जागी है ॥ ५९८ ॥ (६२९–५९८ = ३१)

" फ़रमाओ " = فرماؤ = आज्ञा कीजिये।

वार्तिक तिलक।

जब रात को यमनराज सोया, तब प्रभुने यवनों के इष्ट देव (मुहम्मद "साहिब) का रूप वेष बनाकर स्वप्न में उसको आज्ञा की कि " हमको प्यास लगी है, " सुनके भूपाल ने सादर कहा कि " जल पीजिये "। आपने पूछा कि " पानी कहां है ? " उसने बताया " आबख़ाने में है। "

तब आपने रिस में आकर कहा कि " वहां कोई प्रेमी सेवक तो है ही नहीं, पिलावे कौन ?" वह कुछ न बोला। तब आपने उसको एक लात मारकर पूछा कि " अरे तूने हमारी बात सुनी नहीं ? " तब घबड़ाके कहने लगा कि " जिस बड़भागी को आप आज्ञा दीजिये सो पिलावे " आपने आज्ञा की कि " उस पिलाने वाले प्रेमी को तो तूने पकड़कर क़ैद किया है। "

ऐसा सुन बादशाह बहुत घबड़ाया, डरा, और उसके हृदय में भक्तिभाव उत्पन्न हुआ। उसकी सोती हुई बुद्धि जाग उठी और स्वयं उसकी भी नींद टूट गई ॥

" अब समझे कछु सो नरनाहू। टेढ़ देखि शंका सबकाहू " ॥

(दो०) " सन्तननिन्दा अति बुरी, भूलि सुनो जनि कोइ।
किये सुने सब जन्मके, सुकृत डारै खोइ ॥ १ ॥ "

(७६६) टीका। कवित्त (८४३–७६६ = ७७)

दौरे नर ताही समै बेगि दै लिवाय ल्याए, देखि लपटाये

पाय नृप, दृग भीजे हैं । " साहिबू तिसाये, जाय अबही पिवावौ नीर, और पै न पीवैं, एक तुमही पै रीझे हैं ॥ लेवौ देस गांव, " " सदा पीवहीं सो लाग्यौ रहौं, गहौं नहीं नैकु धन पाय बहु छीजे हैं " । संग दै मसाल, ताही काल में पठायें, यों कपाट जाल खुले, छाल प्यायौ जल, धीजे हैं ॥ ५९९ ॥
(६२९–५९९ = ३०) वार्त्तिक तिलक ।

यवनराज की आज्ञा से उसी क्षण लोग दौड़ जाके श्रीप्रेमनिधि जी को लिवालाये, बादशाह देख नेत्रों में प्रेम के आंसू भर आपके चरणों में पड़के कहने लगा कि "साहिबू को तृषा लगी है; और के हाथ से नहीं पीते; एक आपही पर प्रसन्न हैं, आप शीघ्र अभी जाकर जल पिलाइये; और मुझसे देश गांव जो चाहिये सो लीजिये, मुझे दास समझिये, मैं सदा चरणों ही से लगा रहूंगा । "

आपने उत्तर दिया कि " मैं उसी से लगा रहता हूं धन कुछ भी नहीं लूंगा मुझको बहुत धन मिला और चला गया । धन अनित्य है । "

बादशाह ने उसी क्षण प्रकाश के साथ आपको घर भेजवा दिया । सब किवाड़ खुले, आके स्नानकर, आपने प्रभु को जलपान कराया । आप प्रसन्न हुये और प्रभु भी प्रसन्न हुये ॥ श्रीप्रेमनिधि जी की जय । प्रेम की जय जय जय ॥

(२४१) श्री राघवदास दूबलौ जी ।

(७६७) मूल । छप्पै (८४१–७६७ = ७६)

दूबलो जाहि दुनियां कहै सो भक्त भजन मोटो ।

महंत ॥ सदाचार गुरु शिष्य, त्याग विधि प्रगट दिखाई। बाहेर भीतर विसद, लगी नहिं कलियुग काई॥ राघौ रुचिर सुभाव असद आलाप न भावै। कथा कीर्त्तन नेम मिलें संतनि गुन गावै॥ तायतोलि पूरौ निकष ज्यौं घन अहरनि हीरौ सहंत। दूवलो जाहि दुदियां कहैं सो भक्त भजन मोटौ महंत॥ १६८॥ (२१४-१६८=४६)

वार्तिक तिलक।

जिन राघव को संसार के लोग "दुबलेजी" वा "दूबरजी" कहते हैं, सो भगवद्भक्ति और नामस्मरण भजन में बड़े मोटे महंत थे। सुन्दर आचार तथा गुरु शिष्य की रीति त्याग विधि आपने अपने आचरणों से प्रगट दिखा दिया। बाहर और भीतर हृदय से अति निर्मल थे। कलियुग की काई मलीनता नहीं लगने पाई। "श्री राघवदास दुबलेजी" का स्वभाव बहुतही अच्छा था क्योंकि आपको असद वार्ता का कहना सुनना प्रिय नहीं लगता था। संतों में मिले हुये नियम से श्रीहरिकथा नाम कीर्तन प्रभु के गुणों को सदा गाते थे। जैसे सुवर्ण को तपाय के कसौटी में कसने से चोखाई की परिक्षा होती है और हीरा की अहरनि (निहाई) पर रखकर घन की चोट सहने से परीक्षा होती है ऐसेही आप गुरु संतों की चोट सहने वाले परीक्षा में पूरे थे, भक्ति, भजन और सत संग में मोटे महन्त थे॥ अपने पदों में आप "दुबरा" वा "दूबर" छाप (भोग) रखते थे॥

(७६८) मूल । छप्पै (८४३-७६८=७५)

दासनि के दासत्त को, चौकस चौकी ए मढ़ी ॥
हरिनारायण, नृपति पदम[2], "बेरछै" बिराजैं ।
गांव "हुसंगाबाद" अटलैं, ऊधौं, भलछाजैं ॥
मेलै तुलसीदास, भट ख्यात, देव कल्यानौ । बो-
हिथ बिगँरामदास, "सुहेलै" परम सुजानौ ॥
"औली" परमानंद के ध्वजा सबल धर्म की
गड़ी । दासनि के दासंत को चौकस चौकीए
मढ़ी ॥ १६९ ॥ (२१४ – १६९ = ४५)

वार्तिक तिलक ।

श्री भगवतदासों की दासता के लिये, ये चौकस चौकी मढ़ी हुए अर्थात् जैसे मार्ग चलने वालों को टिकने की चौकियां होती हैं, ऐसेही श्री भगवतदासों के रहने के अर्थ इन संतसेवियों के पुनीत गृह सुशोभित हुये;

(१।२) बेरछैं ग्राम में श्रीहरिनारायण जी, और राजा पदुम[2] जी विराजमान हुए ।

(३।४) हुसंगाबाद नगर में श्रीअटलैं जी और ऊँधो जी बहुत अच्छे शोभित हुये ।

(५।६) पासही में मिले हुये श्रीतुलसीदास जी तथा देव-कल्यान जी संतसेवा में विख्यात सुभट थे ।

(७) सुहेले में भवसागर की नौका सरीखे बिगरामदास जी परम सुजान थे । और—

(८) "झौली" में श्रीपरमानन्द जी के द्वार पर भागवत धर्म की दृढ़ ध्वजा गड़ी थी ॥

(७६९) मूल । छप्पै (८४३—७६९ = ७४)

अबला सरीर साधन सबल एबाइं हरिभक्ति बल ॥ देमां[1], प्रगट सब दुनी, रामाबाई[2], बीरां[3], हीरामनि[4] । लालौ[5], नीरां[6], लक्षि[7], जुगल पार्वती[8,9], जगत धनि ॥ खीचांनि[10], केसा[11], घनां[12], गोमंती[13], भक्त उपासिनि । वादरांनी[14], बिदित गंगां[15], जमुनां[16], रै दांसिनि[17] ॥ जेवां[18], हरिषां[19], जोइंसिनि[20] कुवारिरायें[21], कीरति अमल । अबला सरीर साधन सबल ए बाइं हरि भक्ति बल ॥ १७० ॥ (२१४—१७० = ४४)

वार्तिक तिलक ।

इन बाइयों की शरीर तो अबला स्त्रीयों के थे, परंतु सबल साधन करके ये श्रीहरिभक्ति में बड़ी बलवान हुईं ।

(१) सब जगत में प्रगट श्रीदेमाबाई जी

(२) श्रीरामाबाई जी

(३) श्रीबीरांबाई जी

(४) श्रीहीरामनि जी

(५) श्रीलाली जी

(६) श्रीनीरां जी

(७) श्रीलक्ष्मीबाई जी

(८।९) दोनों "पार्वती" जगत में धन्य हुईं

(१०) श्रीखीचनि जी

(११) श्रीकेशीन जी

(१२) श्रीघनाबाई जी

(१३) श्रीगोमती जी, श्रीहरिभक्तों की उपासना करनेवाली

(१४) जगत विख्यात् श्रीबादरानी जी

(१५) श्रीगंगाबाई जी
(१६) श्रीयमुनाबाई जी
(१७) श्रीरयदासिनि जी
(१८) श्रीजेवाबाई जी
(१९) श्रीहरिषांबाई जी
(२०) श्रीजोइसिनि जी
(२१) निर्मलकीर्तियुक्त श्रीकुँवरिराइ जी

(२४२) श्रीकान्हरदास जी ।

(७७०) मूल । छप्पै (८४३–७७० = ७३)

कान्हरदास संतनि कृपा हरि हिरदै लावो लह्यौ ॥
श्रीगुरु शरणौ आय भक्ति मारग सत जान्यौ ।
संसारी धर्महि छाँड़ि झुठ अरु सांच पिछान्यौ ॥
ज्यौं साखा द्रुम चंद जगतसों इहिं बिधि न्यारौ ।
सर्वभूत सम दृष्टि गुनानि गंभीर अति भारौ ॥
भक्त भलाई वदन नित कुवचन कबहुं नाहिन कह्यौ । कान्हरदास संतनि कृपा हरि हिरदै लाहौ लह्यौ ॥ १७१ ॥ (२१४ – १७१ = ४३)

वार्तिक तिलक ।

श्रीकान्हरदास जी ने संतों की कृपा से अपने हृदय में परम लाभ श्रीहरिस्वरूप को पाया । श्रीगुरु शरण में आकर सुन्दर भक्ति के मार्ग को यथार्थ जाना, संसारियों के धर्म कर्मों को छोड़, जगत को झूठा तथा आत्मस्वरूप को सत्य पहिचाना । जैसे लोग बतलाते हैं कि " अमुक वृक्ष की शाखापर वह चन्द्रमा दिखाता है " पर चन्द्रमा

उस शाखा से लाखों कोस पर है, इसी प्रकार चन्द्रशाखा न्याय से श्रीकान्हरदास जी कहने मात्र ही को तो संसार में रहे परन्तु वस्तुतः पृथक् थे। और सर्व भूतों में सम दृष्टि से भगवद्रूप व्याप्त देखते; शुभ गुणों से भरे, अति गंभीर, समुद्र के समान थे; अपने मुख से भगवद्भक्तों की भलाई बड़ाई सदा कहते; कुवचन कभी न बोले। इस प्रकार आपने अपने हृदय में हरि रूप का लाभ उठाया॥

(२४३।२४४) श्रीकेशवलटेरा श्रीपरशुराम जी।

(७७१) मूल। छप्पै (८४३–७७१ = ७२)

लट्यौ लटेरा आन बिधि, परम धरम अति पीन तन॥ कहनी रहनी एक एक प्रभु पद अनुरागी। जस बितान जग तन्यौ संत संमत बड़ भागी॥ तैसोई पूत सपूत नूत फल जैसोई परसा। हरि हरिदासनि टहल, कबित रचना पुनि सरसा॥ (श्री)सुरसुरानंद संप्रदाय दृढ "केसव" अधिक उदार मन। लट्यौ लटेरा आन बिधि, परम धरम अति पीन तन॥ १७२॥ (२१४–१७२ = ४२)

वार्त्तिक तिलक।

(१) श्रीकेसवलटेरा जी जगत के विधि से अति दुर्बल थे।

(दो०) "नारायण तू भजन कर, काहू करैंगे कूर।
अस्तुति निन्दा जगत की दोउनके शिर धूर"॥

और परमधर्म श्रीभगवद्भक्ति से परम पुष्ट थे ।

(दो०) स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात।
तिनके मन मन्दिर बसहु, सीयसहित दोउ भ्रात ॥

आपकी कहनी और रहनी एक समान थी, तथा श्री सीतारामचरणानुराग में अद्वितीय थे । आपके संतसंमत सुयशका वितान लोक में तन गया था ।

(२) जैसे बड़भागी श्रीकेशव जी थे वैसेही आपके सुकृत वृक्ष के नवीन फल सपूत पूत श्रीपरशुराम जी श्रीहरि और हरिदासों की सेवा टहल में तत्पर हुये। तथा हरि यशयुक्त कवित्त अति सरस रचते थे। श्री १०८ सुरसुरानन्द स्वामी जी के संप्रदाय में दृढ़ श्रीकेशव लटेरा जी अतिशय उदार मन वाले हुये ॥ स्वामी श्री १०८ सुरसुरानन्द जी की जय ॥

(२४५) श्रीकेवलराम जी ।

(७७२) मूल । छप्पय (८४३-७७२ = ७१)

केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किया ॥ भक्ति भागवत विमुख जगत गुरु नाम न जानै । ऐसे लोक अनेक ऐंचि सनमारग आनै॥ निर्मल रति निहकाम, अजा तें सदा उदासी । तत्व दरसी तम हरन सील करुना की रासी ॥ तिलक दाम नवधार तन कृष्ण कृपा करि दृढ़ दिया । केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किया ॥ १७३ ॥ (२१४-१७३ = ४१)

वार्तिक तिलक।

श्रीकेवलराम जी ने कलियुग के पतित जीवोंको पावन किया। जो जगत के जीव भक्ति भक्त भगवंत गुरु को नाम मात्र भी नहीं जानते थे, उनको भी विमुखता से खींचकर, भक्ति सतमार्ग में आरूढ़ करदिया। प्रभुके विषे आपकी निर्मल प्रीति थी, विषै सुखसे निष्काम, माया से सदा उदासीन रहते थे। अनात्म, आत्म, परमात्म तीनों तत्वों को ज्ञान दृष्टि से यथार्थ देखनेवाले विवेकी थे और सब जीवों का अज्ञान रूपी अन्धकार हरनेवाले, शील और करुणा की राशि ही थे। आपने जीवों को तिलक कंठी माला और नवधा भक्ति रूपी रत्न तथा श्रीकृष्ण कृपालुता भले प्रकार दृढ़ादी। इस प्रकार कलियुग के बहुत से पतित जीव आपने पावन किये।

(७७२) टीका। कवित्त (८४१ - ७७१ = ७०)

घर घर जाय कहै यहै दान दीजै मोकों कृष्ण सेवा कीजै नाम लीजे चित लायकै। देखे भेषधारी दस बीस कहूं अनाचारी, दये प्रभु सेवनिकों रीति दी सिखायकै॥ करुणा निधान कोऊ सुनै नही कान कहूं, बैल के लगायो सांटौ लोटे दया आयकै। उपट्यौ प्रगट तन मन की सचाई अहो, भए तदाकार कहौं कैसे समझायकै॥ ६०० ॥ (६२९ - ६०० = २९)

वार्तिक तिलक।

आप सबों के घर में जा जाके यही कहते थे कि "श्रीकृष्ण सेवा करो और चित्त लगाके उनका नाम

लिया करो; मुझे यही दान दो।" जहां कहीं दस बीस वैष्णव वेषधारी अनाचारी देखते थे, उनको अपने पास से प्रभु की मूर्तियां देकर सेवा पूजा भजन की रीति सिखला देते थे।

करुणानिधान तो आप ऐसे थे कि वैसा कहीं कोई कानों से सुनने में भी नहीं आता, एक समय मार्ग में कोई बनजारा बैल लिये जाता था, आप भी पास पास चले जारहे थे, उसने अपने बैल को एक सांटी मारी, यह देखते ही श्रीकेवलराम जी दया से भूमि पर गिरपड़े, लोगों ने उठाकर देखा तो आपकी पीठ में वही सांटी ज्यों की त्यों प्रत्यक्ष उपटी है! देखिये, आप के मन की कृपा की सचाई कि तदाकार होगये। यह आश्चर्य रीति किस प्रकार कहने और समझाने में आसक्ती है?

(२४६) श्रीआसकरन जी।

(७७४) मूल। छप्पै (८४३–७७४ = ६९)

श्रीमोहन मिश्रित पद कमल, "आसकरन" जस बिस्तर्‌यो॥ धर्मसील गुनसींव महा भागौत राजरिषि। पृथीराजकुलदीप भीमसुत बिदित कील्ह सिषि॥ सदाचार अति चतुर बिमल बानी रचना पद। सूरधीर उद्दार बिनै भल पन भक्तनि हद॥ सीतापति राधासुबर भजन नेम कूरम धर्‌यो। श्रीमोहन मिश्रित पद कमल "आसकरन" जस बिस्तर्‌यो॥१७४॥(२१४–१७४ = ४०)

वार्तिक तिलक

श्रीजानकीमोहन और श्रीराधिकामोहन दोनों मोहन मिश्रित चरण कमलों की आसा करनेवाले श्री "आसकरनजी" ने प्रभुका तथा अपना यश विस्तार किया। आप, कूर्मवंशी (कछवाह) श्रीपृथीराज जी के कुलके दीपक, भीमसिंह जी के पुत्र, श्री स्वामी कील्हदेवजी के शिष्य, नरवरगढ़ के राजा परम विख्यात हुये। बड़े धर्मशील, शुभ गुणों के सीम, महा भागवत राजर्षि, सूर, धीर, अति उदार, विनययुक्त, सदाचार तत्पर, हरिभक्तों से अनुराग तथा भलप्पन करने वालों में श्रेष्ठ हुये। विमल वानी से, प्रभु सुयशयुत पद, रचना करने में अति चतुर थे। श्रीसीतापति और श्रीराधावर के पूजन भजन का नियम आपने अपने हृदय में दृढ़ धारण किया॥

(७७५) टीका। कवित्त (८४३–७७५ = ६८)

नरवरपुर ताकौ राजा नरवर जानौ मोहन जू धरि हियें सेवा नीकं करी है। घरी दस मंदिर में रहैं रहै चौकी द्वार, पावत न जान कोऊ ऐसी मति हरी है॥ पर्यौ कोऊ काम आय अबही लिवाय ल्यावौ कहै पृथीपति लोग कान में न धरी है। आई फौज भारी, सुधि दीजियै हमारी, सुनि वहू बात टारी, परी अति खरभरी है॥ ६०१॥(६२९–६०१ = २८)

वार्तिक तिलक।

श्रीआसकरन जी सब नरों में श्रेष्ठ नरवरगढ़ के राजा युगलमोहन जी को हृदय में धारण कर बहुत अच्छी सेवा पूजा इस प्रकार करते थे कि दश घड़ी दिन चढ़े तक मंदिर

में रहते थे, और द्वारपर चौकी खड़ी रहती थी कि उतने समय भीतर कोई भी नहीं जाने पाता था। ऐसी मति भजन में एकाग्र थी।

एक समय संयोगवश नरवरगढ़ में बादशाह आया और दोपहर के पहिले ही सुभटोंको आज्ञा दी कि "आसकरन जी को अभी लिवा लाओ" राजभटों ने, आकर भक्त-राज के द्वारपालों से कहा, पर किसी ने उन दूतों की नहीं सुनी। तब बहुत भारी सेना आई; सेनापति ने कहा कि "राजा को हमारी बात सुनाओ" लोगों ने वह बात भी टालदी। तब सेनापति लोग क्रोध से अति आतुर हुये।

(७७६) टीका। कवित्त (८४३–७७६ = ६७)

कहिकै पठाई, "कहौ कीजियै लराई," सुनि रुचि उप-जाई चलि पृथीपति आयो है। पर्यौ सोच भारी, तब बात यों बिचारी कही "आप एक जावौ," गयौ अचिरज पायो है॥ सेवा करि सिद्धि, साष्टांग ह्वैकै भूमि परे, देखि बड़ी वेर, पांव खड्ग लगायो है। कटिगई एड़ी, ऐपै टेढ़ीहू न भौंह करी करी नित नेम रीति धीरज दिखायौ है॥ ६०२॥ (६२९–६०२ = २७)

वार्त्तिक तिलक।

सेनापति ने बादशाह के पास कहला भेजा कि "यदि आज्ञा हो तो हम युद्ध का आरंभ करैं, क्योंकि हमारा वृत्तान्त राजा के पास कोई भी पहुंचाता ही नहीं।" सुनकर बादशाह के मनमें राजा के देखने की रुचि उत्पन्न हुई। स्वयं आया।

तब राजा के मंत्री आदिकों को बड़ा सोच पड़ा, विचार कर यवनाधीश से बोले कि "केवल एक आप मंदिरके भीतर जाइये"। मनमें आश्चर्य मान भीतर जाकर देखा कि 'आस-करन जी पूजा समाप्त कर भूमिमें पड़े साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं'। "प्रेम सहित अँसुअन ढरै, धरे युगल को ध्यान।

नारायण ता भक्तको, जगमें दुर्लभ जान॥"

ध्यानयुक्त बड़ीबेर पड़ेदेख, यवनराज ने राजा के चरण में धीरे से खड्ग मारा। आपकी एड़ी कटगई तथापि न दुख का कुछ भान, और न भौंह तक टेढ़ी हुई। जिस प्रकार नित्य प्रणाम करने का नियम था उसी प्रकार धैर्य देखने में आया

(चौ०) मन तहँ, जहँ रघुबर बैदेही।

बिनु मन, तन दुख सुख सुधि केही॥

(७७७) टीका। कवित्त (८४३-७७७=६६)

उठि चिक डारि; तब पाछें सों निहारि, कियो मुजरा बिचारि, पादशाह अति रीझे हैं। हित की सचाई यहै, नेकु न कचाई होत, चरचा चलाई भाव सुनि सुनि भीजे हैं॥ बीते दिन कोऊ नृपभक्त सो समायौ, पृथीपति दुख पायौ, सुनी भोग हरि छीजे हैं। करैं विप्र सेवा तिन्हे गाँव लिखि न्यारे दिये वाके प्रान प्यारे लाड करौ कहि भीजे हैं॥६०३॥ (६२९-६०३=२६)

"मुजरा"=مجرا=जुहार, प्रणाम।

वार्तिक तिलक।

फिर उठकर प्रभुके मंदिर में चिलमन (व्यवधान,

चिक) डाल, पीछे देखा, बादशाह को खड़े पा, यथोचित जोहार किया। बादशाह, राजा की भक्ति प्रीति नियम की सचाई तथा दृढ़ता देख विचारकर अतीव प्रसन्न हुआ।

फिर कुछ भाव भक्ति का प्रश्न किया। श्रीआसकरन जी के मुख से उत्तम उत्तर सुन, सरस हृदय होकर, चला गया ॥ "जो प्रभु से सच्चा सो जीता ।
श्रीहरि सांचे मन के मीता ॥"

कुछ कालान्तर में वह भक्त राजा (श्रीआसकरन जी) भगवत धाम को पधारे; बादशाह सुन बड़ा दुखी हुआ। पीछे यह भी सुना कि "उनके प्रभु को भोग राग यथार्थ नहीं लगता।" तब पूजा सेवा करनेवाले ब्राह्मणों को राज्य से न्यारे ग्राम लिखदिया और कहा कि "आसकरन जी के प्राण प्यारे प्रभु को यथार्थ पूजन प्रेम लाड़ प्यार किया करो।" ब्राह्मण वैसाही करनेलगे। यवन राज अति प्रसन्न हुये ॥ "धीजे हैं" = प्रसन्न सुखी हुए।

(२४७) श्रीहरिवंश जी ।

(७७८) मूल । छप्पै (८४३-७७८ = ६५)

निहिकिंचनभक्तनि भजै हरि प्रतीति "हरिवंस" के ॥ कथा कीरतन प्रीति, संत सेवा अनुरागी। खरिया खुरपा रीति ताहि ज्यों सर्बसु त्यागी ॥ संतोषी, सुठि, सील, असद आलाप न भावै। काल वृथा नहिं जाय निरंतर गोविंद गावै ॥

सिष सपूत श्रीरंग को उदित पारषद अंस के।
निहिकिंचन भक्तनि भजै हरि प्रतीति हरिवंस के
॥ १७५ ॥ (२१४-१७५ = ३९)

वार्त्तिक तिलक।

निष्किंचन होके अर्थात् कुछ पदार्थ का संग्रह नहीं रखके, श्रीहरि विषे प्रीति प्रतीति युक्त होके, "श्रीहरिवंश भक्त" निष्किंचन (विरक्त) हरिभक्तों की सेवा करते थे। (चौ०) तेहिते कहत सन्त श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरिकेरे॥

श्रीसीताराम कथा श्रवण तथा नाम कीर्तन में अति प्रीति, और संत सेवा में परम अनुराग था।

"रसिकन को सतसंग नित, युगल ध्यान दिन रैन।
परम विराग सुवेष वर, बोलत सुखद सुबैन॥"

जैसे एक समय एक राजा ने गंगास्नान कर अपने पास के लाखों रुपये के पदार्थ दान कर दिये, और उसी समय एक घसियारा जिसके पास केवल खरिया (जाली) और खुर्पा मात्र था उसने भी दोनों (सर्वस्व) दान करदिया; स्वर्ग में राजा और घसियारा दोनों में घसियारा राजा से उत्तम लिखा गया क्योंकि घसियारेने अपना सर्वस्व दान किया; ऐसेही "हरिवंश जी" सर्वस्व के त्यागी (दानी) थे।

अति संतोषी, परम सुशील थे; असत् वार्ता का कहना और सुनना आपको कभी न अच्छा लगता, थोड़ा भी काल वृथा नहीं जाता; निरन्तर श्रीगोविन्द गुणगान करते थे। श्रीरंग जी के बड़े सपूत शिष्य श्रीहरिवंश जी भगवत पार्षदों के अंशसे उदय (प्रकट) हुये॥

(२४८) श्रीकल्यान जी ।

(७७९) मूल । छप्पै (८४३–७७९ = ६४)

हरिभक्ति भलाई गुन गँभीर, बांटें परी कल्यान के ॥ नवकिशोर दृढ़व्रत अनन्य मारग इक धारा । मधुर वचन मन हरन सुखद जानत संसारा ॥ पर उपकार बिचार सदा करुना की रासी । मन वच सर्बस रूप भक्तपद रेनु उपासी ॥ "धर्मदास" सुत सीलसुठि मनमान्यौ कृष्ण सुजान के । हरिभक्ति भलाई गुन गँभीर बाँटे परी कल्यान के ॥ १७६ ॥ (२१४—१७६ = ३८)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरि भक्ति, और सबसे भलाई करनी, तथा सन्त गुणोंकी गंभीरता "श्रीधर्मदास जी के पुत्र श्रीकल्यान भक्त जी" के बखरे में पड़गई । नवल नन्दकिशोर के दृढ़ प्रेमव्रत में आपकी अनन्य मनकीवृत्ति नदी के धारा की नाईं एकरस लगी रहती थी । मनहरन मधुर वचनों से सब को सुखद थे यह बात संसार में विदित थी । सदा परोपकार, सारासार विचार, और करुणा की राशि थे । मन वचन तन धन सर्वस्व रूपसे हरिभक्तों के चरणों की रेणु की उपासना करते थे । आप सुठि, सुशीलयुक्त, श्रीकृष्ण सुजान जी के मनके भावते हुये ॥

(२४९) श्रीबीटलदास जी।

(७८०) मूल। छप्पय (८४३–७८० = ६३)

बीठलदास हरि भक्ति के, दुहूं हाथ लाडू लिया॥ आदि अंत निर्वाह भक्तपद रज व्रतधारी। रह्यो जगत सों अेड तुच्छ जाने संसारी॥ प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी। महत सभा में मान जगत जान रै दासी॥ पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोविंद जुग फल दिया। "बीठलदास" हरि भक्ति के, दुहूं हाथ लाडू लिया॥ १७७॥ (२१४ – १७७ = ३७)

वार्तिक तिलक।

श्रीवीठलदास जी दोनों हाथों में श्रीहरि भक्ति के लड्डू लिये अर्थात् जीवनावधि इस लोक में हरि भक्ति मय सुयश, और शरीर छूटने पर भगवत्धाम का लाभ उठाया। श्रीहरि भक्तों के चरण रज सेवन का व्रत धारण कर आदि से अंत तक निर्वाह किया; जगत से ऐड़ युक्त होकर संसार के धनी लोगों को तुच्छ समझा। प्रभुता पति की पद्धति अर्थात् श्रीश्री (लक्ष्मी) संप्रदाय में प्रगट कुलदीप होकर प्रकास किया।

सब जगत जानता था कि आप रैदास जी के वंश में उत्पन्न हुये तथापि महज्जनों के सभा में आपका बड़ा मान होता था। श्रीरामसुयश युत पदको पढ़ते पढ़ते परलोक

गति हुई अर्थात् तन तजके श्रीराम धाम को प्राप्त हुये । इस प्रकार श्री गुरु गोविंद ने युगल फल दिये ।

(७८१) मूल । छप्पै (८४३–७८१ = ६२)

भगवंत रचे भारी भगत भक्तनि के सनमान को ॥ "क्वाहब" श्रीरँग[१] सुमति, सदानँद[२] सर्वसु त्यागी । स्यामदास[३] "लघुलंब" अनानि, लाखै[४] अनुरागी ॥ मारू मुदित कल्यान[५], "परस" वंसी नारायन[६] । "चेता" ग्वाल गोपाल[७], संकर[८] लीला पारायन ॥ संत सेय कारज किया तोषत स्याम सुजान कों । भगवंत रचे भारी भगत भक्तन के सनमान को ॥ १७८ ॥ (२१४–१७८ = ३६)

वार्तिक तिलक ।

श्रीभगवन्त ने, अपने भक्तों के सन्मानके अर्थ, अपने इन भारी भक्तों को बनाया । जिनने सन्तों की सेवा की और अपने कार्य से श्रीश्याम सुजान को संतुष्ट किया ।

(१) क्वाहब ग्राम में श्रीरंग जी सुन्दरमति वाले

(२) श्रीसदानन्द जी, अपना सर्वस्व त्याग करने वाले

(३) श्रीलघुलंब ग्राम में श्रीश्यामदास जो अनन्य

(४) श्रीलाखैजी अनुरागी

(५) मारवाड़ में श्रीकल्यान जी मुदित सन्तसेवक

(६) परस में श्रीबंशीनारायणजी

(७) चेता में गोपाल जी ग्वाल

(८) भगवतलीलापरायण श्रीशङ्कर जी

(२५०) श्रीहरीदास जी ।

(७८२) मूल । छप्पै (८४३–७८२ = ६१)

तिलक दाम पर कामकों “हरीदास” हरि निर्मयो ॥ सरनागत कों “ सिवर; ” दान “ दधीच; ” टेक “ वलि ” । परम धर्म प्रहलाद; सीस “जगदेव” देनकलि ॥ वीकावत वानैत भक्तपन धर्म धुरंधर । तूंवर कुल दीपक, संत सेवा नित अनुसर ॥ पारथ पीठ अचरिज कौन सकल जगत में जस लियो । तिलक दाम पर काम कों हरीदास हरि निर्मयो ॥ १७१ ॥ (२१४–१७९ = ३५)

“ पारथपीठ ” = श्रीपारथ (अर्जुन) जी की पीढ़ी (वंश) में ।

तिलक कंठी माला मात्र धारण करनेवाले वैष्णवों के भी कामना पूर्ति करने के लिये हरि ने श्रीहरीदास जी को निर्मान किया । आपके गुण गण अति अनुपम थे, सरनागत जन की रक्षा करने के लिये राजा शिवि के समान; दान देनेमें दधीच के सरिखे; दान देकर सत्यता की टेक न छोड़ने में राजा बलि के सदृश; परम धर्म भगवतभक्ति में प्रहलाद जी के सरिस थे और रीझके सीस तक दे देने में कलियुग में जैसे जगदेव थे उसी प्रकार के थे । श्रीहरीदास जी बीकावत, भक्त पन का बाना धरनेवाले, धर्मधुरंधर, “ तूंवर ” कुलके दीपक, संतसेवा में नित्य तत्पर रहनेवाले थे (बंशका प्रभाव) ।

“ बीकावत बानैत भक्त बंश पाण्डव अवतारी । कपि जो बीरा लियो

उठाय सीस अम्बर कइ झारी ॥ पीठ परिक्षित (पारथ) सार का सभा साख सन्तन कही। टेक एक वंसी तनी, जन गोविंद की निबही ॥ "

(७८३) टीका कवित्त। (८४३-७८३=६०)

प्रह्लाद आदि भक्त गाए गुण भागवत सब इक ठौर आए देखे "हरिदास" मैं। "रीझि 'जगदेव,'" सों यों कहिके बखान कियौ, जानत न कोऊ सुनौ कर्‍यों लै प्रकास मैं॥ रहै एक नटी सक्ति रूप गुण जटी गावै लागै चटपटी मोह पावै मृदु हाँस मैं। राजा रिझवार करै देवे को बिचार, पै न पावै सार काटै सीस "राख्यौ तेरे पास मैं" ॥ ६०५ ॥ (६२९--६०४ = २५)

वार्तिक तिलक।

श्रीप्रह्लाद जी, शिवि, दधीच, वलि, इन भक्तों के गुण श्रीभागवत ग्रंथ में प्रसिद्ध हैं; उन सबों के गुण इकट्ठे श्री हरिदास जी में देखेगये।

श्रीनाभा स्वामी जी ने रीझ में जगदेवजी के समान बखान किया सो "जगदेव" की रीझ का वृत्तान्त (श्रीप्रियादास जी) कहते हैं कि कोई नहीं जानता, इस्से मैं प्रकाश करता हूं। एक शक्तिरूपिणी नांचनेवाली नटी रूप गुण युक्त बड़ी चटकीली तान गाके मंद मंद हँसी से मोह उत्पन्न करती थी। राजा जगदेवरिझवार, देखके, देनेको विचार करता, परन्तु उसके योग्य कोई द्रव्य नहीं पाया तब नटी से कहा कि "मैंने अपना सीस तुझको दिया, काट ले"। नटीने उत्तर दिया कि "सीस अब मेरा है, अभी मैं आपके ही पास रखती हूं"।

(७८४) टीका। कवित्त (८४१–७८४ = ५९)

दियौ कर दाहिनो मैं, यासो नहीं जाचौ कहूं, सुनि एक राजा भेद भाव सों बुलाई है। निर्त्त करि गाई रीझि "लेवो कही;" आई "देहु" ओड्यौ बायों हाथ; रिस भरिकै सुनाई है ॥ "इतो अपमान !;" पानि दक्षिन लै दियौ अहो नृप जगदेवजू कों; " "ऐसी कहा पाई है ?"। "तासो दसगुणी लीजै, मोकों सो दिखाय दीजै;" "दई नहीं जाय काहू, मो हिये सुहाई है" ॥ ६०५ ॥ (६२९–६०५ = २४)

वार्तिक तिलक।

जब जगदेव ने मस्तक देदिया तब नटी ने कहा कि "मैं ने अपना दाहिना हाथ आपको दिया, अब इस हाथ से किसी से न मांगूगी और न लूंगी।"

यह सुनकर उस नटी को एक राजा भेद भावसे बुलाकर नाच करा और रीझके कुछ देनेलगा। उसने बायां हाथ बढ़ाया। राजा रिसाके कहने लगा कि "बायां हाथ पसार तुम हमारा अपमान करती हौ ?" उसने उत्तर दिया कि "मैं अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवजी को देचुकीहूं, उसके समान वस्तु दूसरा कौन देसकता है ?"

राजा कहने लगा कि "उसने क्या दिया ? मुझे दिखादो; मैं उस्से दशगुणी वस्तु दूंगा।" नटी बोली कि "उसने मुझे बहुत प्यारी वस्तु दी है सर्वस्व दिया है; वैसा कोई भी नहीं देसकता"।

एक महात्मा ने लिखा है कि वह नटी श्रीकाली जी का अंश अवतार थी।

(७८५) टीका। कवित्त (८४३-७८५ = ५८)

कितो समझावै " ल्यावो " कहै, यहै जक लागी, गई बड़भागी पास " वस्तु मेरी दीजियै "। काटि दियो सीस, तन रहै ईशशक्ति लखो, ल्याई बकसीस थार ढांपि, देखि लीजियै॥ खोलिके दिखायो, नृप मुरछा गिरायो तन, धन की नबात अब याको कहा कीजियै। मै जु दीनो हांथ जाति आनि ग्रीव जोरि दई लई वही रीझि पद तान सुनि जीजियै॥६०६॥ (६२९-६०६ = २३)

" बख्शिश " = بخشش = पारितोषक।

वार्तिक तिलक।

नटी ने बहुत समझाया, पर उस राजा ने बड़ी हठ से कहा कि " वह वस्तु लेही आवो। "

नटी ने जगदेव के पास जाके कहा कि " मेरी वस्तु मुझे दीजिये। " राजा ने अपना सीस काट दिया। नटीने शरीर को बड़े यत्न से रखवा सीसको थाल में धरके ढांक के इस राजा के पास लाकर दिखाके कहा कि " श्रीजगदेव जी की दी हुई वस्तु देखो। " देखते राजा मूर्छित हो गिरपड़ा, कहनेलगा कि " धन तो है नहीं यह तो मस्तक है, यह मैं कैसे लेसकताहूं ? " नटी ने कहा कि " ऐसी वस्तु पाकर तब अपना दाहिना हाथ देदिया है "।

फिर उस नटी की शक्ति देखिये कि माथा लाकर जगदेव जी के गले में जोड़कर वही पद तान गानेलगी, सीस जुड़ गया, वह जी उठा॥

(७८६) टीका। कवित्त (८४३–७८६ = ५७)

मुनी जगदेव रीति, प्रीति नृपराज सुता पितासों बखानि कही वाही कौ लै दीजियै। तब तौ बुलाये समझाये बहु भांति खोलि वचन सुनाये "अजू बेटी मेरी लिजिये"॥ नट्यौ स तवार जब कही "डारौ मारि," चले मारिबे कौं,बोली वह "मारौ मत भीजियै" "दृष्टि सो न देखै" कही "ल्यावौ काटि मूंड;" लाए, चाहै सीस आंखिन को, गयौ फिरि, रीझियै॥ ६०७॥ (६२९–६०७ = २२)

वार्त्तिक तिलक।

रूप और गाने पर कौन नहीं रीझता? जगदेव जी का यह सब वृत्तांत एक बड़े राजा की बेटी ने सुन उसपर प्रीति से आसक्त होकर, अपने पिता से कहा कि "मेरा उससे विवाह करदो"।

(दोहा) विद्या अरु बेली, तिया, ये न गनैं कुल जाति।
जो इनके नियरे बसैं, ताही को लपटाति"॥१॥

"प्रीति न जानै जात कुजात। भूख न जानै रूखा भात"॥

तब वह जो बड़ा राजा था कि जिसके राजके अंतर्गत जगदेव राजा था, सो उसने जगदेव को बुलाकर बहुत प्रकार समझाकर खुलके कहा कि "मेरी बेटी तुम लो"।

इसने नहीं अंगीकार किया। तब उस राजा ने जगदेव के मार डालने की आज्ञा दी। उसकी बेटी ने कहा कि "मैं उसके प्रेम में डूबी हूं, मारो मत, मेरे सामने लाओ"। लोगों ने कहा कि "तुम्हारी ओर दृष्टि नहीं करेगा;" तब वह दुष्टा

बोली कि "सीस काटके लाओ" जब मस्तक काटकर लाये, राजा की बेटी जगदेव जी के नेत्रों को देखने लगी; तब सीस का मुँह फिर गया । यह बात रीझने योग्य है ॥

(७८७) टीका कवित्त (८४३–७८७=५६)

निष्ठा रिझवार रीति कीनी बिस्तार यह सुनौ साधु सेवा हरीदास जू ने करी है ॥ परदा न संतसौं है देत हैं अनंत सुख रह्यौ रुख जानि भक्त सुता चित धरी है ॥ दोऊ मिलि सोवैं रितु ग्रीषम की छात पर गात पर गात सोये सुधि नहीं परी है । दातुन के करिवे को चढ़े निसि सेस आप चादर उढाय नीचे आए ध्यान हरी है ॥६०८॥ (६२९–६०८ = २१)

वार्त्तिक तिलक ।

यह तो जगदेव-रिझवार-निष्ठा विस्तार से वर्णित हुई । अब जिस प्रकार श्रीहरीदास जी ने साधुसेवा की है सो सुनिये । आपके गृह में साधु मात्र को ओट (परदा) नहीं था, अनेक प्रकार से सेवा कर सुख देते थे । खान पान पाकर एक वेषधारी आपके यहां रहगया, सो हरीदास जी की कन्या से विषयासक्त होगया । एक दिवस ग्रीषम ऋतु में छत पर दोनों एकट्ठे सोतेथे; श्रीहरीदास जी कुछ रात्रि शेषमें प्रभाती (दतुअन) करने के लिये अकस्मात कोठेपर चढ़े; सो दोनों को देख के अपना दुपट्टा ओढ़ाकर, नीचे आ श्रीभगवत का ध्यान करने लगे ॥

(दो०) या भव पारावार को, उलँघि पार को जाय । तिय छवि छाया ग्राहिनी, वीचहि पकरय आय ॥ १ ॥ रसन सिसन संजम करै, प्रभु चरनन तर वास । तबही निश्चै जानिये राम मिलन की आस ॥ २ ॥

(७८८) टीका । कवित्त (८४३ – ७८८ = ५५)

जागि परे दोऊ, अरवरे देखि चादरकों, पेखि पहिचानी सुता पिताही की जानी है। संत दृगनये चले बैठे मग पग लये गये लै एकांतमें यों बिनती वखानी है ॥ "नेकु सावधान ह्वैके कीजिये निसंक काज, दुष्टराज छिद्र पाय कहै कटु बानी है। तुमको जु नाव धरै जरै सुनि हियौ मेरौ, डरै निन्दा आपनी न होत सुखदानी है ॥ ६०१॥ (६२१–६०१ = २०)

वार्तिक तिलक ।

दोनों जागे और दुपट्टा देख घबड़ा गये; कन्याने पहिचाना कि यह मेरे पिता ही का वस्त्र है, नामका साधु ऊपर से उतर लज्जा से नेत्र नवाये चला; श्रीहरिदास मार्ग में नीचे बैठे थे देखकर, उसके चरणों में प्रणाम कर एकान्तमें लेगये और विनयपूर्वक शिक्षा करने लगे कि "ऐसा कार्य युक्ति सावधानी से किया करिये, निःसंक होकर करनेमें दुष्ट लोग छिद्र देख पाय कटु बानी कहते हैं; आप सब संतों की निन्दा सुन मेरा हृदय जलेगा इस्से मैं डरताहूं; सन्तकी निन्दा अपनी ही निन्दा है सो अपनी निन्दा सुख देनेवाली नहीं होती है (वा, "सन्त की निन्दा अप्रिय है मुझे, और मैं अपनी निन्दा से नहीं डरता, वह तो सुखदाई है, निन्दक बपुरा प्राण हमारा")

(७८९) टीका । कवित्त (८४३–७८९ = ५४)

इतनी जतावनी में भक्तिकों कलंक लगै, ऐपै संक वही, साधु घटतीन भाइयै। भई लाज भारी, विषैवास धोय डारी नीके, जीके दुख रासि, चाहै कहूं उठि जाइयै॥ निपट मगन

किये नाना विधि सुखदिये, दियेपै न जान, "मिलि लालन लड़ा इयै"। गोबिन्द अनुज जाके बांसुरी कौ सांचोपन मन मैं न ल्यायौ नृप इहि बिधि गाइयै ॥ ६१० ॥ (६२९—६१० = १९)

वार्त्तिक तिलक ।

मैंने आपको इतनी बात जो जताई सो मैं उचित नहीं समझता मानो मेरी भक्ति में इतना कलंक सरीखा लगा, पर क्या करूं? साधुकी निन्दा वा घटती मुझे नहीं अच्छी लगती इससे इतना कहा है"। सुनकर उस साधु को बड़ी भारी लज्जा और ग्लानि हुई, सब विषय दुर्गंध को छोड़ मनमें बड़ा दुखी हो, वहां से चले जाने को चाहा; परन्तु आपने बहुत समझा कर उसको अनेक प्रकार का सुख दे रक्खा और कहा कि "मैं और आप मिल जुलकर प्रभुको लाड़ लड़ाएँ।"

श्रीहरीदास जी के छोटे भाई "श्रीगोविन्द" जी थे उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि श्रीकृष्णचन्द्र जी के आगे और संतों के समीप में बहुत उत्तम बांसुरी बजाते थे यह सुन बादशाह ने कहा कि "मुझे बांसुरी सुनादो।" पर आपने किसी प्रकार उसके समीप नहीं बजाया। अपनी टेक नहीं छोड़ी।

इस प्रकार, हमने श्रीहरीदास जी की कथा गान की ॥

"टेक एक बंशी तनी "जन गोबिंद" की निर्बही ॥ युगल चन्द किरपाल तासुको दास कहावै। बादशाह सों पैंज हुकुम नहिं बेणु बजावै ॥ &c., &c.,

(७८१) पृष्ठ १२६२ मूल १७८ में, कोई महात्मा बताते हैं कि १ कान्ह, २ श्रीरंग, ३ सदानन्द, ४ श्यामदास ५ मारू, ६ मुदित, ७ कल्यान, ८ परस, ९ बंसी, १० नारायण, ११ चेता, १२ ग्वाल गोपाल, १३ शंकर, ये सब (तेरहो) नाम भक्तोंहीं के हैं। और किसी ने 'लघुलम्ब' के स्थान में पाठान्तर "लघुबंश" बताया है और "नीच कुल में उत्पन्न श्यामदास" यह अर्थ उसके किये हैं॥

(७८२) पृष्ठ १२६३ मूल १७९ में, "बीकावती रानी" के समान श्रीहरीदास जी का बाना, भक्ति में था। सब संसार में इन्होंने यश लिया।

श्रीअर्जुन जी के पुत्र श्रीअभिमन्यु जी, उनके श्रीपरीक्षित जी, सो परीक्षित जी की पीढ़ी (बंश) में, श्रीहरीदास जी थे, तो आप में ऐसे गुण रहे तो कोई अश्चर्य्य नहीं॥ कोई महाशय ऐसा अर्थ भी करते हैं कि "यदि इन्हें श्रीअर्जुन जी के समान कहें तो इसमें आश्चर्य्य की बात क्या है।"

☛ ज़िला मिर्ज़ापूर "चनार" के पण्डित श्रीभानुप्रताप तिवारी जी, जिन्हों ने श्रीकबीर जी की साखी, तथा श्री गोस्वामी जी के बिनय पत्रिका को इङ्गरेजी में उल्था किया है, इन महाशय से भी मुझे समय समय पर सहायता मिली है। इसके लिये इन महाशय को मेरे अनेक धन्यवाद हैं॥

---

(२५१) श्रीकृष्णदास जी।

(७९०) मूल। छप्पै (८४३-७९०=५३)

नन्द कुंवर "कृष्णदास" कों निज पग तें नूपुर दियो॥ तान मान सुर ताल सुलय सुंदरि सुठि सोहै। सुधा अंगभ्रू भंग गान उपमाकों को है॥ रत्नाकर संगीत, राग माला, रँगरासी। रिझए

राधा लाल भक्त पद रेंनु उपासी ॥ स्वर्ण कार "खरगू" सुवन भक्त भजन पद दृढ लियौ । नन्द कुवर "कृष्णदास" कौं निज पग तें नूपुर दियौ ॥ १८० ॥ (२१४–१८० = ३४)

वार्तिक तिलक ।

श्रीकृष्णदास जी को नृत्य करते समय में श्रीनन्दकुमार जी ने अपने चरणों से नूपुर (घुँघुरू) निकालके पहना दिया। आप नृत्य भेद और गान में बड़े प्रवीन थे । पद तान का प्रमान स्वर ताल अच्छी लय ये सब आपके गान नृत्य में अंग सुन्दर शोभते थे । सुधा भ्रू भंग आदिक व्यंजक अभिनय और गान अनुपम था । संगीत रत्नाकर और रागमाला, रंगरासि आदि में जो गान नृत्य के भेद लिखे हैं सो सब आप जानते थे । इन गुणों से श्रीराधालाल जी को प्रसन्न कर लिया । श्रीहरिभक्तों के चरण रेणु के उपासक स्वर्णकार (सोनार) "श्रीखड़गू जी" के पुत्र (कृष्णदास जी) ने भगवद्भक्तों के भजन का पद दृढ़ कर ग्रहण किया ॥

जिनको गाना भले प्रकार आता है, जिनका स्वर अति मधुर है, जिनको प्रेम के पद बहुत कण्ठस्थ हैं वा स्वयं रच सकते हैं, और गाने के समय जो रस का अनुभव करते हैं, उन बड़भागियों की प्रशंसा किससे हो सकती है ॥

(७९१) टीका । कवित्त (८४३–७९१ = ५२)

कृष्णदास ए सुनार राधाकृष्ण सुखसार, लियौ सेवा करि पाछे नृत्य बिसतारियै । ह्वै करि मगन काहू दिन तन सुधि भूली, एक पग नूपुर सो गिर्‌यौ न सँभारियै ॥ काल

अति रंग भरे जानी जति भंग भई पाय निज खोलि आप बांध्यौ सुख भारियै। फेरि सुधि आई देखि धारा लै बहाई नैन कीरति यों छाई जग भक्ति लागी प्यारियै ॥ ६११ ॥ (६२९–६११ = १८)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकृष्णदास जी सोनार ने श्रीराधाकृष्ण जी की भक्ति का सुखसार लिया। पहिले सप्रेम सेवा पूजा करते, पीछे प्रभु के आगे नृत्य विस्तार करते थे।

एक दिन नाचते समय आनन्द में मग्न हो शरीर की सुधि भूल गए। एक चरण का नूपुर गिर गया। उसको आपने सुधारा नहीं। श्रीनन्दलाल जी ने नृत्य देख रंग में भरे जाना कि नृत्य की जति गति भंग हुवा चाहती है; इससे अपने चरण का नूपुर खोल कृष्णदास के पग में बांध अति सुख पाया। फिर पीछे जब देह की सुधि हुई तब देखें तो अपना नूपुर भूमि में पड़ा है और प्रभु का नूपुर अपने पग में।

प्रभु की कृपालुता को समझ नेत्रों से प्रेम जल की धारा बहने लगी। इस प्रकार आपकी कीर्ति जग में छागई, और भक्ति सब को प्रिय लगी ॥

(७१२) मूल। छप्पै (७४३–७१२ = ५१)

परम धर्म प्रति पोषकौं संन्यासी ए मुकुट मनि ॥ चितसुखं टीकाकार भक्ति सर्वोपर राखी। श्रीदामोदरतीर्थ राम अर्चन विधि भाषी ॥

चंद्रोदय हरि भक्ति नरसिंघारनै कीनी। माधौ, मधुसूदन स्वरस्वती, परमहंस कीरति लीनी ॥ प्रबोधानंद, रामभद्र, जगदानंद, कलिजुग धनि। परमधर्म प्रति पोषकौं संन्यासी ए मुकुट मनि ॥ १८१ ॥ (२१४-१८१ = ३३)

वार्तिक तिलक ।

परमधर्म अर्थात् श्रीभगवतभक्ति को अपने २ ग्रंथ द्वारा परम पुष्ट करने वाले ये संन्यासी सब संन्यासियों के मुकुटमणि के समान हरिभक्त हुये ।

(१) चितसुखानन्द सरस्वती ने गीता आदिक की चितसुखी टीका में श्रीभक्ति ही को सर्वोपर वर्णन किया है ।

(२) श्रीदामोदरतीर्थ जी ने श्रीरामार्चन चंद्रिका में श्रीराम पूजन विधि भक्तिपूर्वक वर्णन किये हैं। देखने योग्य ।

(३) नृसिंहारण्य जी ने श्रीहरि भक्ति चंद्रोदय ग्रंथ सप्रेम निर्मान किया ।

(४।५) मधु सूदन सरस्वती जी ने भक्ति रसायन आदिक ग्रंथ बनाये । ऐसेही माधवानन्द सरस्वतीजी हुये। इन्होंने परमहंस कीर्ति का लाभ लिया ।

(६) श्रीप्रबोधानन्द जी ।(७)श्रीरामभद्र सरस्वती जी ।

(८) श्रीजगदानन्द जी श्रीहरिभक्तिप्रतिपोष करने वाले कलियुग में धन्यतर हुये ॥

(२५२) श्रीप्रबोधानंदसरस्वतीजी ।

(७९३) टीका । कवित्त (८४३-७९३=५०)

श्रीप्रबोधानंद, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्री "चैतन्यचन्द्र" जू के पारखद प्यारे हैं । राधाकृष्ण कुंजकेलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप, दोऊ किए दृग तारे हैं ॥ वृन्दावन बास को हुलास लै प्रकाश कियौ, दियौ सुखसिंधु, कर्म धर्म सब टारे हैं। ताही सुनि सुनि कोटि कोटि जन रंग पायो, विपिन सुहायौ, बसे तन मन वारे हैं ॥ ६१३ ॥ (६२९-६१२=१७)

वार्तिक तिलक ।

श्रीप्रबोधानन्द जी बड़े ही रसिक, आनन्दकन्द श्रीकृष्ण चैतन्य जी के प्रिय पारषद थे । श्रीराधाकृष्ण कुंजकेलि अति नवीन वर्णन किया और रूप रस को पान कर युगल चन्द को अपने नेत्रों के तारे कर लिये । आपने अपने काव्यमें श्रीवृन्दावन वास के उल्लाश का प्रकाश कर उपासकों को सुख सिंधु में मग्न किया । और कर्म धर्म को न्यारे करदिया । उस ग्रंथको सुन २ के करोड़ों लोगोंने प्रेम रंग को पाया । आपने स्वयम् सुन्दर श्रीवृन्दावनमें बसके तन मन धन सब नेव-छावर करदिये ॥

(२५३) श्रीद्वारकादास जी ।

(७९४) मूल । छप्पै (८४३-४७४=४९)

अष्टांग जोग तन त्यागियौ, "द्वारिकादास" जानै दुनी ॥ सरिता "कूकस" गाँव सलिल में ध्यान

धन्यौ मन। राम चरण अनुराग सु दृढ़ जो के साचौ पन॥ सुत कलत्र धन धाम ताहि मो सदा उदासी। कठिन मोह को फन्द तरकि तोरी कुल फांसी॥ "कील्ह" कृपा बल भजन के, ज्ञान खड्ग माया हनी। अष्टांग जोग तन त्यागियो, द्वारिकादास जानै दुनी॥ १८२॥ (२१४-१८२=३२)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीद्वारिकादास जी, क्रमसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, इन सातो अंगों को साधके, आठवें अंग समाधि में स्थित होकर, ब्रह्मरंध्र फोड़, तन त्याग के, श्रीराम धाम को प्राप्त हुये, यह सब संसार जानता है।

कूकस ग्रामके निकट, नदी के जल में स्थित हो, मनमें ध्यान धरा। आपके प्रेमभक्ति का पण सच्चा था इससे श्रीरामचन्द्रचरणोंमें अतिशय दृढ़ अनुराग कर, स्त्री पुत्र धन धाम आदिकों से सदा उदासीन हो, कठिन मोह जाल की सब फांसियां तोड़ दीं। अपने गुरु स्वामी श्रीकील्हदेव जी की कृपादत्त भजन के बल से, ज्ञानखड्ग ले, अविद्या माया को नाश कर, अष्टांग योग से तन त्याग, श्रीराम धाम में जा बसे॥

(२५४) श्रीपूर्ण जी।

(७९६) टीका। कवित्त (८४३-७९५=४८)

पूरन प्रगट महिमा अनंत, करिहै कौन ब-

सान ॥ उदे अस्त परवत गहिर मधि * सरिता भारी । जोग जुगति विस्वास, तहां दृढ़ आसन धारी ॥ व्याघ्र सिंघ गुंजैं खरा कछु संक न मानै । अर्द्धन जातैं पौन उलटि ऊरध कौं आनै ॥ साखि शब्द निर्मल कहा कथिया पद निर्वान । पूरन प्रगट महिमा अनंत करिहै कौन बखान ॥ १८३ ॥ (२१४-१८३ = ३१)

(* अर्थात् श्रीगंगा जी)

वार्तिक तिलक ।

श्रीपूर्णदास जी की अनंत महिमा प्रगट हुई उसको कौन बखान सकेगा । उदयाचल और अस्ताचल के मध्य में जितनी नदिया हैं उन सबों में अति गहिरी सरिता श्रीगंगा जी के निकट, हिमाचल में, आप जोग युक्ति से भगवत के विश्वास पूर्वक दृढ़ आसन धारण कर, ध्यान समाधी लगा, समीप में व्याघ्र सिंह खड़े हुये गर्जते थे, अपने अपान वायुको प्राण में मिलाकर उर्धही को ले जाते, नीचे नहीं जाने पाता । आपने साखी, शब्द, निर्मल कहकर निर्वान पद मोक्षका उपाय वर्णन किया । निश्चय होता है कि ये पूर्ण जी वही हैं कि जिन "पूर्ण विराटी जी" का 'द्वारा' है ॥

(२५९) श्रीलक्ष्मण भट्ट जी ।

(७९६) मूल । छप्पै (८४३-७९६ = ४७)

श्रीरामानुज पद्धति प्रताप, " भट्ट लक्ष्मन "

अनुसर्‌यौ ॥ सदाचार मुनि वृत्ति भजन भागौत उजागर। भक्तनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा कौ आगर॥ संतोषी सुठि सील हृदै स्वारथ नहिं लेसी॥ परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी॥ श्रीभागौत बखान कै, नीर क्षीर बिबरन कर्‌यौ। श्रीरामानुज पद्धति प्रताप, भट्ट लक्ष्मन अनुसर्‌यौ ॥ १८४ ॥ (२१४-१८४ = ३०)

वार्तिक तिलक।

अनन्तश्रीरामानुज स्वामी जी की पद्धिति (संप्रदाय) के प्रतापसे श्रीलक्ष्मण भट्ट जी शरणागति भक्ति मार्ग में यथार्थ प्रवृत्त थे। सदाचार तथा मुनि वृत्ति से, भजन करने वाले उत्तम भागवत हुये। और भगवत भक्तों से अति प्रीत करते, दशधा (प्रेमा) भक्ति के स्थान ही थे। अति संतोषी, परम सुशील, स्वार्थ रहित परम धर्म प्रति पालक, संत मार्ग के उपदेश करने वाले थे। श्रीभागवत की कथा कहकर नीर रूपी मायिक पदार्थ और क्षीर रूपी परमार्थ वस्तु दोनों का विवरण करके पृथक् २ दिखा देते थे। ऐसे विराग ज्ञान भक्ति के धाम आप थे॥

(२५६) स्वामी श्रीकृष्णदास पैहारी जी।

(७९७) मूल। छंद कुंडलिया (८४३-७९७ = ४६)

"गलतें" गलित अमित्त गुण, सदाचार सुठि नीति। "दधीच" पाछे दूसरी करी "कृष्णदास"

कलि जीति ॥ कृष्णदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयौ। अतिथि धर्म प्रतिपाल प्रगट जस जग में लीयौ॥ उदासीनता की अवधि कनक कामिनि नहिं रातो। राम चरण मकरंद रहत निस दिन मद मातो ॥ १८५ ॥ (२१४-१८५=२९)

वार्तिक तिलक।

जैसे दधिचि ऋषि जी ने देवताओं के मांगने से अपना शरीर देदिया, ऐसे ही दधीच गोत्र में उत्पन्न श्रीस्वामी कृष्णदास पयोहारी जी ने कलिकाल को जीत दधीच की नाईं दूसरी बात की। एक समय आपके गुफा के सामने बाघ आया तो आपने उसको अतिथि जान नेवता कर अतिथिधर्म प्रतिपाल पूर्वक अपना पल (मांस) काटके दिया। इस प्रकार के प्रसिद्ध यश को आप जग में प्राप्त हुये।

उदासीनता (वैराग्य) की मर्यादा हुये। और इस संसार सागर में जो कनक कामिनी रूप दो भँवर सब को डुबा देने वाले हैं उन दोनों के रंगसे आप नहीं रँगे। केवल श्रीराम चरण कमल के अनुराग रूपी मकरंद से भ्रमर की नाईं मदमत्त आनन्दित रहते थे। संतों के अमित दिव्य गुणों से गलित अर्थात् परिपक्क, सदाचार, अति नीत युक्त, "गलते" गादी में विराजमान हुये॥

(७९८) टीका। कवित्त (८४३-७९८=४५)

बैठे हे गुफा में, देखि सिंघ द्वार आय गयौ, लयौ यों विचारि "हो अतिथि आज आयो है"। दई जांघ काटि

डारि, " कीजियै अहार अजू " महिमा अपार धर्म कठिन बतायो है ॥ दियो दरसन आप, सांच मैं रह्यौ न जाय, निपट सचाई, दुख जान्यौ न, बिलायौ है । अन्न जल देवे ही कों झींखत जगत नर, करि कौन सकै जन मन भरमायौ है ॥ ६१३ ॥ (६२९–६१३ = १६)

वार्तिक तिलक ।

एक समय स्वामी श्री ६ कृष्णदास जी गलता की गुफा में बैठे थे देखैं तो एक व्याघ्र आकर खड़ा है। आपने विचार किया कि " यह कभी यहां नहीं आया इस्से हमारा अतिथि है इस्को भोजन देना चाहिये, " अपनी जंघाओं का मांस काटकर उस्के आगे डाल दिया और कहा कि " इस्का आहार करो " । देखिये आपकी अपार महिमा, हिंसक अतिथि को भी भोजन देना बताया अर्थात् अपनी करनी से उपदेस दिया । वह मांस खाकर व्याघ्र चला गया। श्री ६ कृष्णदास जी की यह धर्म पालन रूप अतिशय सचाई देख परम धर्म धुरंधर श्रीराम जी से नहीं रहा गया; कोटि काम अभिरूप से आकर दरशन दिये और मस्तक पर कमल कर धर सब दुःख दूर कर दिये। जंघा भी ज्यों की त्यों होगई। श्री १०८ पयहारी जी नयनानन्द पाकर कृतार्थ हुये ।

देखिये लोग अतिथि को अन्न जल देने में झींखते हैं आपके समान कर्म कौन कर सका है इस बात को मनमें विचार करने से ही जीव घबड़ा जाते हैं सो कर कैसे सकैं ?

(२५७) श्रीगदाधरदास जी।

(७९९) मूल। छप्पै (८४३—७९९=४४)

भली भांति निवही भगति सदा "गदाधर-दास" की॥ लालबिहारी जपत रहत निसिबासर फूल्यौ। सेवा सहज सनेह सदा आनँद रस झूल्यौ॥ भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई। आसय अधिक उदार रसन हरि कीरति गाई॥ हरि विस्वास हिय आनिकै, सुपनेहुं आन न आसकी। भली भांति निबही भगति सदा "गदाधरदास" की॥ १८६॥ (२१४—१८६=२८)

वार्तिक तिलक।

श्रीगदाधरदास जी की भक्ति, आदि से अन्त तक सदा एकरस भले प्रकार से निबह गई। प्रफुल्लित मन से दिन रात श्री "लालविहारी" जी का नाम जपते रहते थे, और प्रभु की सेवा सहज स्नेह से किया करते। सदा आनन्द के रस से झूलते भगवत भक्तों से अति प्रीति रखते थे।

आप की रीति सब के मन में भाती थी और अन्तःकरण की आशय अतिशय उदार रही। रसना से हरि कीर्ति गाते, हृदय में श्रीहरि का विश्वास लाते; किसी और की आशा आपने स्वप्ने में भी नहीं की॥

(८००) टीका। कवित्त (८४३—८०० = ४३)

बुरहानपुर ढिग बाग तामें बैठे आय करि अनुराग रह

त्याग पागे स्याम सों । गांव मैं न जात, लोग किते हाहा खात, सुख मानि लियौ गात, नहीं काम और काम सों ॥ पर्‌यौ अति मेह, देह बसन भिजाय डारे, तब हरि प्यारे बोले सुर अभिराम सों । रहै एक साह भक्त कही जाय ल्यावौ उन्हैं मंदिर करावौ तेरौ भर्‌यौ घर दाम सों ॥ ६१६ ॥ (६२९–६१४ = १५)

वार्तिक तिलक ।

श्रीगदाधरदास जी वैराग्य से गृह को त्याग के श्रीश्यामसुन्दर के प्रेम में पगे "बुरहानपुर" के निकट आकर बिराजे । लोग बहुत प्रार्थना करते, परन्तु आप ग्राम में नहीं जाते थे आपके मन और शरीर ने वहां ही सुख मान लिया । आप और कामों से प्रयोजन नहीं रखते थे ।

एक दिन मेघों ने जल की बड़ी बरषा की आप के सब वस्त्र भींग गये, भक्त का दुःख देख भगवान को बड़ी दया लगी, तब एक भक्त सेठ को स्वप्न में अति अभिराम स्वर से आज्ञा दी कि तेरे घर में बहुत द्रव्य भरा है इससे जा मेरे प्रिय भक्त गदाधरदास को लिवा ला सुन्दर मंदिर बनवा दे । तेरे घर में श्रीलक्ष्मी जी की कृपा बनी रहेगी ॥

(८०१) टीका । कवित्त (८४३–८०१ = ४२)

नीठ नीठ ल्याए हरि बचन सुनाए जब, तब करवायौ ऊंचौ मंदिर सँवारिकै । प्रभु पधराये, नाम "लाल" औ "बिहारी" स्याम अति अभिराम रूप रहत निहारिकै ॥ करैं साधुसेवा जामें निपट प्रसन्न होत, आलस न रहत मन

सांवें पात्र झारिकै। करत रसोई जोई राखी ही छिपाय सा-
मा आए घर संत, आप कही " ज्यांवौ प्यारिकै ॥ ६१५ ॥
(६२९–६१५ = १४)

वार्तिक तिलक।

वैश्य भक्त ने प्रभु की आज्ञा मान आपके पास आकर ग्राममें चलने की प्रार्थना की। नहीं अंगीकार किया; तब श्रीहरि के बचन सुनाए; बड़ी कठिनता से लिवा लाये, और सुन्दर बिचित्र ऊंचा मन्दिर बनवाके प्रभु को पधराया। ठाकुर जी का नाम " श्रीलालबिहारी " जी रक्खा। अति सुन्दर श्याम स्वरूप को देखते प्रेम में मग्न होजाते थे।

सन्तों की सेवा ऐसी करते कि जिसमें साधु अति प्रसन्न होते थे; अन्न आदिक जो आता, सो दूसरे दिनको नहीं रहता, अन्न के पात्रों को (अशेष) झार करके सोते थे। परन्तु रसोई करने वाले कुछ सामग्री भगवत के भोग के लिये छिपा रखते थे। एक समय रात में संत आये; श्रीगदाधरदास जी ने रसोइयों पुजारियोंसे कहा कि "जो कुछ सामग्री होय सो प्रीतिपूर्वक बनाके भोजन करावो"॥

(८०२) टीका। कवित्त (८४३–८०२ = ४१)

बोल्यौ प्रभु भूखे रहैं ताके लिये राख्यौ कछू भाख्यौ तब आप काहौ भोर और आवैगो। करि कै प्रसाद दियो लियो सुख पायौ सब सेवा रीति देखि कही जग जस गावैगौ ॥ प्रात भये भूखे हरि गए तीन जाम हारि रहे क्रोध भरि कहे कबधों छुटावैगौ। आयो कोऊ ताही समै को सत

रुपैया धरे बोले गुरु " सीस लै के मारौ " कितौ पावैगो ॥ ६१८ ॥ (६२९–६१६ = १३)

वार्तिक तिलक ।

आप के वचन सुन शिष्य बोला कि "ठाकुर जी भूखे रह जाते हैं इसलिये थोड़ासा अन्न रख छोड़ा है ।" आपने कहा " वही निकाल के सन्तों को पवावो, प्रातःकाल और आवेगा । " शिष्यने रसोई कर भोग लगा के सन्तों को दिया; सन्त प्रसाद पाकर सुखी हुये; श्रीगदाधरदास जी की सेवा रीति देख कहने लगे कि " आपका यश सब जगत गावेगा । "

प्रातःकाल कुछ आया नहीं; प्रभु भूखे ही रह गये ! तीन पहर बीत गये !! तब आपके शिष्य क्रोध कर कहने लगे कि " देखो, अब तक भोग नहीं लगा, हम लोग भूखे मरते हैं, न जानैं इस दुःख को ब्रह्मा कब छुड़ावैगा ? " उसी समय कोई भक्त आकर श्रीगदाधरदास जी के सामने दो सौ रूपये पूजा रक्खी । आप बोल उठे कि " ये रुपये लेकर इसके माथे में मारो, जितनी इच्छा हो उतना पावै, भूखसे व्याकुल हो रहा है " ॥

(८०१) टीका । कवित्त (८४१–८०१ = ४०)

दर्यौ वह साह, " मत मोपै कछु कोप कियौ ? " कियौ समाधान सब बात समझाई है । तब तौ प्रसन्न भयौ अन्न लै जितौ देत, सेवा सुख लेत, साधु रुचि उपजाई है ॥ रहे कोऊ दिन, पुनि मधुपुरी वास लियौ, पियौ ब्रज रस

लीला अति सुखदाई है ॥ लाल लै लडाए, संतनीके भुगता-ए, गुन जाने जिते, गाये, मति सुन्दर लगाई है ॥ ६१७ ॥
(६२९--६१७=१२)

वार्तिक तिलक।

आपके बचन सुन वह भक्त सेठ डरगया कि "स्वामीजी ने कुछ मुझ पर तो क्रोध नहीं किया"। तब श्री गदाधर दास जी ने सब बात समझा कर उस भक्त का समाधान किया। वृत्तान्त सुन सेठ प्रसन्न हुआ; और जितना अन्न लगता उतना देने लगा। उत्तम रुचि से साधु सेवा का सुख लेने लगा।

आप कुछ दिन वहां रहकर फिर श्रीमथुरा पुरी में आकर बसे। अति सुखदाई ब्रज लीला रस को पान किया; इस प्रकार आपने श्रीलाल जी को लाड़ लड़ाया और भले प्रकार संत सेवा का सुख लिया। "हम आपके जितने गुण (यश) जानते थे उतने सुन्दर मति लगाके गान किये।"

दो गदाधर जी श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभु के चौंसठ महन्तों में थे। एक गदाधरदास श्री ६ कृष्णदास पैहारीजी के शिष्य थे। एक गदाधरजी बांदावाले, और एक गदाधर जी श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्यों में थे ॥ श्रीगदाधर वाणी बड़ी उत्कृष्ट कविता हुई।

(२५८) श्रीनारायणदासजी।

(८०४) मूल। छप्पै (८४३--८०४ = ३९)

हरि भजन सींव स्वामी सरस, श्रीनारायण

दास अति ॥ भक्ति जोग जुत, सुदृढ़ देह, निज बल करि राखी। हिये सरूपानन्द, लाल जस रसना भाखी ॥ परिचै प्रचुर प्रताप जानमनि रहस सहायक। श्रीनारायण प्रगट मनौ लोगनि सुखदायक ॥ नित सेवत संतनि सहित दाता उत्तर देसगति। हरि भजन सींव स्वामी सरस, श्रीनारायण दास अति॥१८७॥ (२१४-१८७=२७)

वार्तिकातिलक।

अति सरस मतिवाले श्रीहरि भजन की सींमा स्वामी श्रीनारायणदास जी हुये। अतिशय दृढ़ भक्ति योग से युक्त अपने देहको वीर्य बल के सहित कर रक्खा, और स्वरूपानन्द में मन मग्न किया। जीभ से श्रीलाल जी के नाम यश कहा करते थे। अपने बिख्यात प्रताप से परिचय भी दिया; ज्ञानियों में शिरोमणि भगवत रहस्य के सहायक थे। आपकी बड़ाई कहां तक की जाय लोगों को सुख देने के लिये माना साक्षात् श्रीनारायण स्वयं प्रगट हुये। हित सहित नित्य संतोंकी सेवा करते, उत्तर बदरिकाश्रम देशके जीवों को गति देनेवाले हुये।

श्रीनायण भट्ट जी, (जिनकी कथा मूल८७ कवित्त ३५६ पृष्ठ ८६०।८६१ में कह आए हैं,) "भट्ट नारायन अति सरस, ब्रजमण्डल सों हेत, ठौर ठौर रचना करी, प्रगट कियो संकेत ॥" सो भास्कर जी के पुत्र, श्रीसनातन गोस्वामी के शिष्य थे। बताते हैं कि उनका जन्म सम्वत १६२० (१५६३ ई०) में हुआ था। Dr. Grierson ने भी १५६३ ई० लिखीहै। सं० ११८८ में आपका जन्म

किसीने भूलसे लिखा है। "आपका "ब्रजभक्ति विलास" नामक ग्रन्थ श्रीराधाकृष्ण दास के मतानुसार १५५३ इसवी में बना॥ एक श्रीनारायणदास की कथा मूल १४६ कवित्त ५६१।५६२ में कही है। और एक नारायणदास जी इस (मूल १८७) में वर्णित हैं॥ इत्यादि। इत्यादि॥" श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय।

(८०५) टीका। कवित्त (८४३-८०५ = ३८)

आये बद्रीनाथजू तें, मथुरा निहारि नैन, चैन भयौ, रहैं जहां केसौजू कौ द्वार है। आवैं दरसनी लोग जूतिन कौ सोग हिये, रूपकौ न भोग होत कियौ यों बिचार है॥ करैं रखवारि, सुख पावत हैं भारी, कोऊ जानै न प्रभाव, उर भाव सो अपार है। आयो एक दुष्ट पोट पुष्ट सो तौ सीस दई, लई, चले मग ऐसौ धीरज कौ सार है॥ ६१८॥

(६२९-६१८ = ११)

वार्तिक तिलक।

स्वामी श्रीनारायणदास जी बद्रीनाथ (बद्रिकाश्रम) जी से आकर मथुरा जी को नेत्रों से देख अति आनन्दित हुये, फिर श्रीकेशवदेव जी के द्वार पर रहने लगे। वहांपर दर्शन करनेवाले लोग आते थे, उनके जोड़े (पनही) चुरा ले जानेकी संका मनमें बनी रहती थी। (दोहा) "हरि के मन्दिर जात हैं, हरिदर्शन के आस। लम्बी दँडवत करत, पर, चित्त पनहियन पास"॥ आपने बिचार किया कि "इन सबको दुचितई से प्रभुके रूप दर्शन का सुख नहीं होता"। इस्से आप द्वार पर बैठे जूतियों की रक्षा किया करते थे, गूढ़ और परहितरत सुभाव की बलिहारी। प्रभु-रूप-चिन्तवन से भारी सुख में मग्न रहते थे, अन्तर के

अपार प्रेम भाव का प्रभाव कोई नहीं जानता था।

एक दिन एक दुष्ट आया; ऊपर का वैष्णव वेष आपके नहीं देखा इससे बड़ी भारी गठरी आपके सीसपर रखवाय के ले चला, आपने कुछ भी न कहा हरि ही की इच्छा समझे ऐसे धैर्य दीनता और ज्ञान का सारांश आप के हृदय में था॥ बलिहारी और जयजय आपकी॥

(८०६) टीका। कवित्त (८४३-८०६ = ३७)

कोऊ बड़ौ नर, देखि मग पहिचानि लिये, किये परनाम भूमिपरि, भरिनेह कौ। जानिकै प्रभाव, पाँव लीने महादुष्ट हूं नै, कष्ट अति पायो, छुटयो अभिमान देह कौ॥ बोले आप "चिंता जिनि करौ, तेरौ काम होत;" नैन नीर सोत "मुख देखौं नहीं गेहकौ" भयौ उपदेस, भक्ति देस उन जान्यौ, साधु सक्तिकौ विसेस, इहां जानौ भाव मेह कौ॥ ६१९॥ (६२९—६१९ = १०)

वार्तिक तिलक।

मार्ग में, किसी श्रीमान् भक्तनरने देख पहिचान कर पूर्ण स्नेह से भूमि पर साष्टांग प्रणाम किया। तब वह दुष्ट भी आपका प्रभाव जान चरणों में गिरपड़ा; और देह का अभिमान छोड़ ग्लानि से दुखित हो रोने लगा। श्रीनारायणदास जी ने कहा कि "तुम चिंता मत करो, तुम्हारा यह कार्य मेरे शरीर से हुआ सो भला है।"

(दो०) "क्षमा बड़ेन को चाहिये, ओछन के उतपात।
कहा विष्णु को घटिगयो? जो भृगु मारि लात!"

आपके ऐसे साधुता के वचन सुन वह नेत्रों में जल भरके प्रार्थना करने लगा कि "मैं अब घर का और घरके लोगों का मुख नहीं देखूंगा।" तब आपने कृपा कर उस्को भक्तिमार्ग का उपदेश देकर कृतार्थ किया। देखिये सन्तों की ऐसी शक्ति है, कि जैसे मेघ दुष्ट और सज्जनों के खेत में समान वर्षा करते हैं, इसी प्रकार सन्त सब ही पर कृपा दृष्टि वृष्टि कर कृतार्थ करते हैं।

(२५१) श्रीभगवानदास जी।

(८०७) मूल। छप्पय। (८४३-८०७=३६)

भगवानदास श्रीसहित नित, सुहृद सील सज्जन सरस॥ भजन भाव आरूढ़, गूढ़ गुन वलित ललित जस। श्रोता श्रीभागौत रहसि ग्याता अक्षर रस॥ मथुरापुरी निवास आस पद संतनि इकचित। श्रीजुत "षोजी" "स्याम" धाम सुखकर अनुचर हित॥ अति गंभीर सुधीर मति, हुलसत मन जाके दरस। भगवानदास श्रीसहित नित हृदै सील सज्जन सरस॥ १८८॥ (२१४-१८८=२६)

वार्तिक तिलक।

श्रीभगवानदास जी नित्य ही भक्तिश्री के सहित, सर्व भूतों के सुहृद, शीलवान, सरस हृदय युक्त, अति सज्जन

हुये। श्री भगवत भजन भावना में आरूढ़, प्रभु के गूढ़ गुण और ललित यश से आच्छादित अन्तःकरण वाले थे। श्रीभागवत कथा के रहस्य के और अक्षरों के रसके जाननेवाले श्रोता थे। मथुरा पुरी में वसते, और सन्तों के पद की अनन्य आशा चित्त में रखते थे। श्रीयुत खोजीजी तथा श्री स्यामदास जी के गृह के सुखकारी हितकारी सेवक शिष्य थे। अति गंभीर, सुन्दर धीर मति युक्त थे, और अपने दर्शन से सब जनों के मनमें प्रेमानन्द का उल्लास करदेतथे।

(८०८) टीका। कवित्त (८४३-८०८ = ३५)

जानिबेकों पन, पृथीपति मन आई, यों दुहाई लै दिवाई, "माला तिलक न धारियै"। मानि आनि प्रान लोभ, केतिकनि त्याग दिये; छिए, नहीं जात, जानि वेगि मारि डारियै॥ भगवानदास उर भक्ति सुख रास भर्यौ, कर्यौ लै सुदेस बेस; रीति लागी प्यारियै। रीझ्यौ नृप देखि, रीझि, मथुरा निवास पायौ, मंदिर करायौ, "हरिदेव" सों निहारियै॥६२०
(६२९—६२० = ९)

वार्तिक तिलक।

एक समय पृथ्वीपति (बादशाह) के मनमें यह आया कि "बहुतसे लोग माला और तिलक धारण किये रहते हैं, देखूं तो कि इनमें सच्ची प्रीति और निष्ठा किसकी है?" इसलिये मथुरा में डौंड़ी (मुनादी) फिरवा दी कि " जो कोई माला तिलक धारण करेगा वह मारडाला जायगा "। उसकी आज्ञा मान अपने प्राण के लोभसे बहुत लोगोंने माला

तिलक तजदिये। बहुत से लोग गृह में छिपे रहे, क्योंकि जानते थे कि जो पृथ्वीपति जानेगा तो शीघ्र मारडालेगा।

परन्तु श्रीभगवानदास जी के हृदय में तो भक्तिसुख का सिन्धु भरा था, इस्से सुन्दर दीर्घ द्वादस तिलक और बहुत सी तुलसी की माला धारण कर पृथ्वीपति के समीप गये। देखके हृदय में प्रसन्न हो, ऊपर से रुष्ट होकर उसने पूछा कि "तुमने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी ?" आपने अशंक उत्तर दिया कि "हमारे मत में सिद्धान्त है कि "जो माला तिलक धारण कर प्राण त्याग करता है, वह अवश्य भगवान के धाम को जाता है,। इस लाभके लिये आपकी आज्ञा को धन्य माना"। आपकी सच्ची निष्ठा देख नृपति ने पूछा कहा कि "जो इच्छा हो सो मांगो"। आपने कहा कि "मैं जीवनावधि मथुरा निवास चाहता हूं"। उसने लिख दिया कि "मथुरा की अध्यक्षता जबतक जियो तबतक करो।" श्रीभगवानदास जी ने जन्म भर मथुरा वास किया, और गोवर्धनजी के समीप श्रीहरिदेव जी का मन्दिर बनवाया सो अबतक विराजमान हैं, दर्शन करिये॥

(२६०) श्रीकल्याणसिंह जी।

(८०९) मूल। छप्पै (८४३-८०९=३४)

भक्त पक्ष, उदारता, यह निबही "कल्यान" की॥ जगन्नाथ को दास निपुन, अति प्रभु मन भायो। परम पारषद समुझि जानि प्रिय निकट बुलायो॥ प्रान पयानो करत, नेह रघुपति सों

जान्यौ । सुत दारा धन धाम मोह, तिनुका ज्यों तोन्यौ । कौंधनी ध्यान उरमै लस्यौ, "राम" नाम मुख "जानकी" । भक्त पक्ष उद्दारता, यह निबही कल्यान की ॥ १८९ ॥ (२१४-१८९=२५)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री भगवत भक्तों का पक्ष करना और उदारता अर्थात धन आदिक पदार्थ तथा प्राण तक दूसरे को दे देना, श्री राम कृपासे ये दोनों बातें नोनेरे नगर वाले श्रीकल्यानसिंह जी की, जीवन पर्यन्त निबह गईं । आप श्रीजगन्नाथ जी की दासता में अति निपुण थे और श्रीप्रभु के मनमें भाते थे । श्रीजगन्नाथ जी ने अपना परम पार्षद बिचार, प्रिय जान, अपने निकट बुला लिया । अन्त में प्राण त्याग करते समय अपना स्नेह केवल श्रीरघुनन्दन जी से लगाया, और स्त्री पुत्र धन धाम आदिकों का मोह तृण के समान तोड़ डाला । "जरौ सुसम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ । सन्मुख होत जो राम पद, करै न सहज सहाइ" ॥ आप ऐसे बड़ भागी थे कि अंत में श्रीरघुबर जी के कटि कौंधनी (करधनी) का ध्यान हृदय में साक्षात् आगया और मुखसे "श्री जानकी राम" नाम उच्चारण कर प्राण को त्याग के साकेत श्रीराम धाम को प्राप्त हुये ।

श्रीहरि भक्तों के पक्ष करने का एक वृत्तान्त यह है कि एक समय अपने स्थान नोनेरे नगर से अपने भाई अनूप सिंह के सहित उत्सवदर्शनार्थ श्री वृन्दावन को चले जाते थे

मार्ग में देखा कि एक धनी सरावगी दुष्ट एक दीन वैष्णव को दुःख देरहा है। आपने इन वैष्णव साधू का पक्ष कर उस दुष्ट से बचा लिया। तथा धनादिक दे सुखी कर दिया।

श्रीराधाकृष्णदास जी के अनुमान में श्रीरूप गोस्वामी के शिष्य कल्याण दास यही महानुभाव हैं। परन्तु शृङ्गार निष्ठा वाले श्रीकल्यानदास जी और दास्यनिष्ठावाले कल्यानसिंह जी दो जान पड़ते हैं॥

(२६१।२६२) श्रीसंतदासः श्रीमाधोदास।

(८१०) मूल। छप्पै (८४३–८१० = ३३)

सोदर सोभूराम के, सुनौ संत, तिनकी कथा॥
"संतदास" सदवृत्ति जगत छोई करिडार्यौ।
महिमा महा प्रवीन भक्तिवित धर्म विचार्यौ॥
बहुरयो "माधौदास" भजन बल परचौ दीनौ।
करि जोगिनिं सों वाद वसन पावक प्रतिलीनौ॥
परम धर्म विस्तार हित, प्रगट भए नाहिन तथा।
सोदर सोभूराम के सुनौ संत तिनकी कथा॥
॥ १९० ॥ (२१४-१९० = २४)

"छोई" = सीठी।

वार्तिक तिलक।

हे सन्त जनो! श्रीसोभूरामजी के दोनों भाइयोंकी कथा सुनिये। श्री सन्तदासजी ने सतवृत्ति युक्त, जगत को छोई (सीठी) के समान निरस तुच्छ जानके छोड़ दिया, और

भगवत धर्म भक्ति ज्ञान को प्रबीनता से बिचार कर हृदय में धारण किया; इससे आपकी महा महिमा हुई।

दूसरे भ्राता श्रीमाधवदास जी ने भजन के बल से ऐसा परचौ दिया कि एक समय एकैं कनफटा योगी लोग आप से बिवाद करते बोले कि "हम अपने शृं और मुद्रा को अग्नी में डालते हैं, और तुम अपनी कण्ठी माला डालो, देखैं कि किसके जलते हैं"। आपने कहा कि "मैं कंठी माला अग्नि मे नहीं डालूंगा, मैं अपना अँचला वस्त्र अग्निमें डालता हूं, तुम अपने पत्थरके मुद्रा, सृंगी को डालो।" ऐसा ही किया, कनफटे के सृंगी, मुद्रा जलगये परन्तु आपका वस्त्र न जला, आपने अग्नि से ज्यों का त्यों वस्त्र ले लिया।

परम धर्म (भक्ति) के बिस्तार के लिये जैसे सोभूराम जी के भ्राता प्रगट हुये वैसा दूसरा नहीं हुआ।

माधोदास कई हुये है–

१ श्रीमाधोदास जिनका वस्त्र अग्नि में नजला

२ श्रीमाधवदास जी जगन्नाथ पुरीय।

३ श्रीमाधवदास साभ्रेसई।

४ माधवदास गढ़ा के।

५ माधोदास बरसानेवाले।

६ माधोदास कपूर खत्री।

७ माधोदास भगवत रसिक जीके पिता

८ माधवदास दादूजी के शिष्य

९ माधवभट्ट काश्मीरी।

१० माधोदास (मीरमाधव) काबुली।

११ माधोदास कायथ सहरनपुर वाले

(२६३) श्रीकान्हरदास जी।

(८११) मूल। छप्पय। (८४३-८११=३२)

बूड़िए विदित, "कन्हर" कृपाल, आत्माराम,

आगम दरसी॥ कृष्ण भक्ति को थंभ, ब्रह्मकुल परम उजागर। क्षमासील, गंभीर, सर्व लच्छन कौ आगर॥ सर्वसु हरिजन जानि, हृदै अनुराग प्रकासै। असन, वसन, सनमान करत, अति उज्जल आसै॥ सोभूराम प्रसाद तें, कृपादृष्टि सब पर बसी॥बूड़िऐ विदित कन्हर कृपाल आत्माराम आगम दरसी॥१९१॥ (२१४— १९१=२३)

वार्तिक तिलक।

बूड़िया ग्राम में श्री कन्हरदास जी जगत विख्यात, परम कृपाल, अपने आत्मा में रमण करने वाले, आगम दर्शी अर्थात् भविष्य जानने वाले हुये। श्री कृष्णभक्ति रूपी गृह के स्तंभ (खंभा) आधार के समान, ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, अति प्रकाशमान, क्षमाशील, गंभीर, सर्व शुभ लक्षणों के स्थान हुये। श्री हरि भक्तों को हृदय में अपना सर्वस्व जान, अतिशय प्रेम करते; खान पान वस्त्रादि दे कर अति सनमान करते थे; श्री सोभूराम जी की कृपा प्रसन्नता पाके अति प्रसन्न मन से, सब जीवोंको कृपादृष्टि से देखते थे।

एक श्रीकन्हड़ जी, विट्ठलदास चौबे के पुत्र थे। और ये श्रीकन्हरदास जी ज्ञानी भक्त थे।

(२६४) श्रीगोविन्ददास जी भक्तमाली।

(८१२) मूल। छप्पै (८४३-८१२=३१)

भक्त-रतनमाला सुधन, गोविंद कंठ विकास

किय ॥ रुचिर भीलघननील लील रुचि, सुमति सरितपति। बिविधिभक्त अनुरक्त व्यक्त, बहुचरित चतुर अति॥ लघु दीरघ सुर सुद्ध वचन अविरुद्ध उ-चारन । बिस्ववास बिस्वास दास परिचय विस्तारन ॥ जानि जगत हित, सब गुननि सु सम, नरायनदाम दिय ॥ भक्तरतनमाला सुधन गोविंद कंठ विकास किय॥ १९२ ॥(२१४-१९२ = २२)

वार्तिक तिलक ।

श्री भगवद्भक्त रूपी रत्नों की महामूल्य माला (यह भक्तमाल ग्रंथ) श्रीगोविंददास जी के कंठ में विकाशित हुई, अर्थात उनने कंठाग्र किया । आप अति सुन्दर सील-वान, श्रीरामघनश्याम सुन्दर जी की लीला में रुचि वाले सुन्दर मति के सिन्धु ही थे । अनेक भक्तों में अनुराग करने वाले, और उन भक्तोंके यथार्थ स्पष्ट चरित्रों के जानने वाले, अति चतुर थे । श्री भक्तमाल पढ़ने में जहां जैसा लघु दीर्घ अक्षर और स्वर चाहिये वहां वैसेही शुद्ध अविरुद्ध शब्द उच्चारण करते थे । विश्व निवासी भगवान का सदा वि-श्वास करने वाले, संतों के परिचे को अर्थात् जो परीक्षा प्रभाव प्रगट हुये उनको, आप विस्तार पूर्वक कहा करते थे ।

श्रीगोविंददास जी को, सब जगत के जीवों का हित करने वाले और सब शुभ गुणों में(सु = स्व)अपने समान जानके श्री ६ नारायणदास जी ❁ (श्री १०८नाभास्वामीजी) ने स्वयं

भक्त-रत्नमाला दी। अर्थात् अर्थ आख्यायिका युक्त इस "भक्तमाल" को पढ़ा दिया।

☛ निश्चय होता है कि यह छप्पै भक्तमाल पूर्ण हुये पीछे श्री नाभा स्वामी जी ने लिख दिया है।

और "नारायणदास ने दिया" ऐसा परोक्ष (अन्यपुरुष) नाम लिखा, सो अपना नाम परोक्ष से भी लिखने की कवियों की रीति प्रसिद्ध है ही।

जो मूल १०२ कवित्त ४१० । ४१४ पृष्ठ ९४६ । ९५१ में श्रीगोविन्द स्वामी वर्णित हैं, उनसे ये भिन्न हैं।

(२६५) श्रीनृपमणि जगत सिंहजी।

(८१३) मूल। छप्पै (८४३–८१३ = ३०)

भक्तेश भक्त भवतोषकर, संत नृपति वासो कुँवर॥ श्रीजुत नृपमनि जगतसिंघ दृढ़ भक्ति परायन। परम प्रीति किये सुवस सील लक्ष्मीनारायन॥ जासु सुजस सहजहीं कुटिल कलि कल्प जु घायक। आज्ञा अटल सुप्रगट, सुभट कटकनि सुखदायक॥ अति ही प्रचंड मारतंड सम, तम खंडन दोरदंड वर। भक्तेश भक्त, भवतोष कर, संत नृपति वासो कुँवर॥ १९३॥ (२१४–१९३ = २१)

वार्त्तिक तिलक।

भक्तों के स्वामी, श्रीभगवान के तोष प्रसन्नता करने वाले, "संत राजा आनन्दसिंह" के और "वासोदेई" के कुँवर (पुत्र), नृपशिरोमणि श्रीजगत सिंह जी जगत में परम भक्त हुये।

आप दृढ़ भक्ति में तत्पर थे। परम प्रीति से आपने श्रील क्ष्मीनारायणजी को स्वभाविक अपने बस कर लिया। जिस भक्तराज जी का सुन्दर यश, सहजही में, कुटिल कलिकाल के, कल्प कहिये सामर्थ्य अर्थात् पाप का घायक (नाशक) था। आपकी आज्ञा अटल अर्थात् कोई मेट नहीं सक्ता था, यह बात प्रगट है। आप ऐसे सुभट थे कि जहां बीर सेनाओं में प्राप्त होते वहां सबको अति युद्धोत्साह सुख देते थे। आप के श्रेष्ठ भुजदंडों का प्रताप अज्ञान और अन्धकार रूपी शत्रुवों के नाश करने के लिये अति प्रचंड मार्तण्ड (सूर्य्य) के समान था।

(८१४) टीका। कवित्त (८४३-८१४=२९)

जगताकौ पन मन सेवा श्रीनारायन जू, भयौ ऐसौ पारायन, रहै डोला संगही। लखिबेकों चलै आगे, आगे सदा पाछे रहै, ल्यावै जल सीस, ईश भयौ हियो रंगही॥ सुनि जसवंत जयसिंघ के हुलास भयौ, देख्यौ, दिल्ली मांझ, नीर ल्यावत अभंग ही। भूमि परि, बिनैकरी, "धरी देह तुमहीं नै, जातै पायौ नेह भीजिगए यों प्रसंगही"॥६२१॥ (६२९—६२१=८)

वार्तिक तिलक

सन्तनृपति आनन्दसिंहकेबेटे श्रीजगतसिंहजीका श्रीलक्ष्मी-नारायण जी की सेवामें बड़ा प्रेमपण और मन ऐसा तत्पर था कि, जो अपने गृह से कहीं जाते थे तो उत्तम पालकी पर विराजमान कर श्रीलक्ष्मीनारायण जी को आगे २ ले चलते

थे और चाकर सरिस आप पीछे पीछे; परन्तु जब युद्ध करने को चलते थे, तब आपही आगे रहा करते थे और प्रभु की पालकी पीछे रहा करती थी। पूजा सेवा की जितनी कृत्य हैं सो सब अपने ही हाथों से करते, यहां तक कि प्रभु के स्नान के लिये जल प्रेमरंग से भरे नित्य अपने माथे पर रखकर लाया करते थे।

एक बेर शाहजहांनाबाद (दिल्ली) में सब राजा एकट्ठे थे, तब आपका। जल लाना सुनके जयपुर के राजा जयसिंह और जसवंतसिंह जी के मन में दर्शन का हुलास हुआ; दोनों जाके मार्ग में बैठे; श्री जगतसिंह जी ब्राह्मण, वैष्णव, सिपाहियों, और सतावधि मनुष्यों के साथ नंगे पांव, सुवर्ण के कलश में जल मस्तक पर लिये, सीताराम नाम जपते चले आते थे, वे दोनों राजा देख प्रेम से भर, भूमिपर पड़, प्रणाम कर, प्रशंसा करने लगे, कि "मनुष्यदेह धरने का फल आपही ने पाया, कि जो आपका श्री प्रभुमें ऐसा प्रेम है।"

(८१५) टीका। कवित्त (८४३-८१५ = २८)

नृपति जैसिंघजू सों बोल्यौ "कहा नेह मेरे? तेरी जो बाहिन ताकी गंध को न पाऊं मैं। नाम "दीपकुँवरि" सो बड़ी भक्तिमान जानि, वह रसखानि ऐपै कछुक लड़ाऊं मैं॥ सुनि सुख भयौ भारी, हुती रिस वासों, टारी, लिए गांव काढ़ि फेरि दिये, हरि ध्याऊं मैं। लिखि कै पठाई "बाई करैं सो करन दीजै, लीजै साधु सेवा करि निसि दिन गाऊं मैं॥ ६२२॥

(६२९-६२२ = ७)

वार्तिक तिलक।

श्रीजगतसिंह जी सुनके राजा जयसिंह जी से कहने लगे कि "मेरे क्या प्रेम भक्ति है, आपकी बहिन जो 'दीप कुँवरि' नामकी हैं, सो अवश्य बड़ी ही भक्ता हैं, और प्रेम रस की खानही हैं, उनके प्रेम का गंध भी मैं नहीं पासक्ता; हां, उन्हीं की प्रीति रीति देख सुनके संग प्रभाव से मुझे भी प्रभु की ओर कुछ २ प्रेम भक्ति हुई है लाड़ लड़ाता हूं।"

आपके वचन सुन जयसिंह जी को बड़ाही आनन्द हुआ। किसी कारण से "दीपकुँवरि" से अप्रसन्नता होगई थी, सो अपने जी से हटा, कर उनके ग्राम (जागीर) जो ले लिये थे सो सब छोड़ देकर प्रार्थना पत्र लिखकर, अपराध क्षमा कराकर, प्रसन्न किया। और, अपने प्रधान मंत्रियों को लिख भेजा कि "बाईजी (बहिन) जो पूजा भजन दान साधु सेवा आदिक करें, सो भले प्रकार करने देना; धनादिक जो लगे सो देना; मैं उनकी कृपा से श्रीहरि के ध्यान में लगूंगा। और भगवत यश गान करूंगा"॥

(२६६) श्रीगिरिधरग्वाल जी।

(८१६) मूल। छप्पै (८४३-८१६=२७)

गिरिधरन ग्वाल, गोपालकौ सखा सांच लौ संगकौ॥ प्रेमीभक्त, प्रसिद्ध गान, अति गद गद बानी। अंतर प्रभु सों प्रीति, प्रगट रहै नाहिन

छानी *॥ नृत्य करत आमोद विपिन तन वसन बिसारै। हाटक पट हित दान रीझि तत्काल उतारै॥ "मालपुरै" मंगल करन रास रच्यौ, रसरंग कौ। गिरिधरन ग्वाल गोपाल कौ सखा सांच लौ संग कौ ॥१९४॥ (२१४-१९४=२०)

"छानी"=छन्न=छिपाई, ढांकी। * दो०। "प्रेम छिपाए ना छपै, होही जात प्रकास। दाबे दूबे ना दबै, कस्तूरी की बास" ॥ १ ॥

वार्तिक तिलक।

श्रीगोपालीदेई के पुत्र श्रीगिरिधरग्वाल जी श्रीगोपाल जी के सच्चे संगी सखा थे। प्रसिद्ध प्रेमी भक्त; परम उदार और कवी थे; प्रभुयश गान करते समय में आपकी अति गदगद बानी हो जाती थी। आपके अन्तर हृदयकी प्रीति छिपाने से भी नहीं * छिपती थी; नाम गुण गाते, गुण श्रवण करते, में प्रगट होजाती थी; जब श्रीवृन्दाबन के एकांत बन में प्रेमानन्द से मत्त, गुण गान कर नाचने लगते थे, तब देह के वस्त्र, वो देह का भान, भूल जाते थे; जो और कोई भगवत यश गान करने लगै, तो रीझ के अपने सुवर्ण के आभूषण और वस्त्र तत्काल उतार के देदेते थे।

एक समय "मालपुर" ग्राम में मंगल का करनेहारा रास रचके कराया देखके परम प्रेम रसरंग में पगके घरका सब धन वस्तु प्रभुको भेट करादिया॥

दो० "गिरिधर स्वामी पर कृपा, बहुत भई, दश कुंज। रसिक रसिकनी कौ सुजस, गायौ तिहि रसपुञ्ज॥" (श्रीध्रुवदास)

ग्वाल पदवी आपने श्रीनन्दनन्द जी के सखा होनेसे पाईथी। गिरिधरजी कई हुए हैं। एक बरसाने वाले दो० "बरसाने गिरिधर सुहृद, जाकें ऐसा हेत। भोजन हू भक्तन बिना, धर्यौ रहै, नहिं लेत ॥" और श्रीवल्लभाचार्य्य जी के पोते, विट्ठलनाथ के बेटे श्रीगिरिधर जी पृष्ठ ८३८ मूल ८० में तथा मूल १११ में वर्णित हुए।

(८१७) टीका। कवित्त (८४३-८१७=२६)

गिरिधर ग्वाल, साधुसेवा ही कौ ख्याल जाके, देखि यौं निहाल होत, प्रीति सांची पाईहैं। संत तन छूटे हूंते लेत चरणामृत जो, और अब रीति कहौ कापै जात गाई है ॥ भये द्विज पंच इकठौरे सो प्रपंच मान्यौ, आन्यौ सभामांझ कहैं "छोड़ौ न सुहाई है। जाकै हो अभाव मत लेवौ, मैं प्रभाव जानौं मृतक यों बुद्धि ताकौ बारो" सुनि भाई है॥६२५॥ (६२९--६२३=६)

"ख्याल" = ख़्याल् = خیال = सुरति, सुधि, स्मरण।

वार्तिक तिलक।

श्रीगिरिधरग्वाल जी परम भक्त हुये। आपके चित्त में सदा साधु सेवाहीका चिन्तवन बना रहा करता था। सन्तोंका दर्शन करते ही प्रेमानन्द से निहाल होजाते थे। क्योंकि प्रभु की कृपासे सच्ची प्रीति प्राप्त थी, यहां तक कि साधु का प्राण छूट जानेपर भी चरणामृत लेलेते थे, तब सजीव सन्तों में जो आपकी जैसी प्रीति रीति थी वह कौन कह सकता है? इस बातको देख सब ब्राह्मण प्रपंच पंचायत और सभा कर श्रीगिरिधर जी को बुलाकर कहने लगे कि "मृतक वैष्णवों

का चरणामृत लेना छोड़ दो यह भला नहीं है।" उनके बचन सुन आपको नहीं अच्छे लगे; उत्तर दिया कि "जिसको अभाव हो वह मत ले, मैं तो भगवत भक्तों का प्रभाव जानता हूं कि वे कभी मरते नहीं, वे तो प्रभु के ध्यान में समा जाते हैं, आप लोग भी सन्तों में से मृतक बुद्धि उठा लीजिये।"

आप की वार्ता सुन अच्छे लोगोंको बहुत अच्छी लगी।

(२६७) देवी श्रीगोपाली जी।

(८१८) मूल। छप्पय (८४३-८१८=२५)

गोपाली जनपोषकों, जगत जसोदा अवतरी॥ प्रगट अंगमें प्रेम नेम सों मोहन सेवा। कलियुग कलुष न लग्यौ, दासतें कबहुं न छेवा॥ वानी सीतल, सुखद, सहज गोविंद धुनि लागी। लक्षम कला गँभीर, धीर, संतनि अनुरागी॥ अंतर सुद्ध सदा रहै, रसिकभक्ति निज उर धरी। गोपाली जन पोषकों जगत जसोदा अवतरी॥ १९५॥ (२१४-१९५=१९)

वार्तिक तिलक।

श्री "गोपाली" जी हरिभक्त जनोंके पोषण करने के लिये मानों श्री "यशोदा" जी ने अवतार लिया। तन मन में प्रेम प्रगट दीखता था; श्री मोहनलाल की सेवा पूजा सप्रेम नियम से करती थी, कलियुग कृत पाप आप के तन मन में नहीं छूगया, और आपने भगवत दासों से

अंतर कपट कभी न किया; वाणी शीतल सुख देनेवाली बोलतीं, सहजहीं गोविन्द नाम की धुन लगी रहती थी; शुभ लक्षण, कलाचातुर्य्य, गाम्भीर्य्य, धीरता, अदिक गुणों से सम्पन्न, और सन्तों में अति अनुरागवती थीं। "श्रीगोपाली जी" का अन्तःकरण सदा शुद्ध रहता था, उस शुद्ध हृदय में आपने वात्सल्य रस की भक्ति धारण की। आपके पुत्र बड़े हरिभक्त हुए।

(२६८) श्रीरामदास जी।

(८१९) मूल। छप्पै (८४३–८१९ = २४)

श्री रामदास रसरीति सों, भलीभांति सेवत भगत॥ सीतल, परम सुसील, वचन कोमल मुख निकसै। भक्त उदित रवि देखि हृदै वारिज जिमि विकसै॥ अति आनँद, मन उमगि संत परिचर्य्या करई। चरण धोय दंडौत विविधि भोजन विस्तरई॥ "वछवन" निवास, विस्वास हरि, जुगल चरण उर जगमगत। श्रीरामदास रस रीति सों भलीभांति सेवत भगत॥ १९६॥ (२१४–१९६ = १८)

वार्तिक तिलक।

श्रीरामदास जी परम प्रीति रसरीति से भलीभांति भगवत भक्तों की सेवा करते थे। अति शीतल, परम सुशील, स्वभाव से आप के मुख से सदा कोमल वचन

निकलते थे; जैसे उदित सूर्य्य को देख कमल विकसते हैं, इसी प्रकार हरिभक्तों को देख अति प्रफुल्लित होते थे, मनमें अति आनन्द उमगा के, सन्तों की सेवा परिचर्या इस प्रकार करते थे कि प्रथम दण्डवत कर चरणों को धो विभव विस्तार से त्रिविध भांति के भोजन कराते थे। ब्रजके "वत्स वन" में निवास कर, श्रीबिहारी जी में विश्वास युक्त जगमगाते श्रीहरि जुगल चरणों को हृदय में धारण किया।

(८२०) टीका। कवित्त (८४३-८२० = २३)

सुनि एक साधु आयौ, भक्तिभाव देखिवेकों, बैठे रामदास, पूछे "रामदास कौन है ?" उठे आप धोए पांव, "आवै रामदास अब," "रामदास कहो ? मेरे चाह और गौन है॥" "चलौ जू प्रसाद लीजै, दीजै रामदास आनि," "यही रामदास, पग धारौ निज भौन है"। लपटानौ पाइन सों, चायन समात नाहिं, भायनि सों भर्यौ हिये, छाई जस जौंन्ह है॥६२६॥(६२९-६२४ = ५)"जौंन्ह"=उजाला।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीरामदास जी की प्रीति, रीति साधु सेवा, की बड़ाई सुन, एक साधु भक्तिभाव देखने के लिये आये; श्री रामदास जी बैठे थे; सो उन्हीं से पूछा कि "रामदास कौन हैं ?" आप उठके सन्त को दण्डवत कर, चरण धो, बोले कि "अभी आता है रामदास आप चलिये प्रसाद पाइये," सन्त ने कहा कि "रामदास कहां हैं ? उनके दर्शन की मुझे विशेष चाह है, प्रसादादिक की चाह सामान्य है।" तब आपने

हाथ जोड़कर विनय किया कि "चलिये प्रसाद पाइये, तब मैं रामदास को बुला दूंगा।" सन्त ने पुनः कहा कि "नहीं रामदास जी के दर्शन कर, तब पाऊंगा।" तब आप बोले कि "आप अपने गृह में पधारिये, 'रामदास' यही है"। साधु जी सुनतेही चरणों में लपट गये, प्रेमानन्द हृदय में नहीं समाता था, और भाव से भरके कहने लगे कि "धन्य आप हैं, आप के यश रूपी चन्द्रमा की जोन्ह (जोन्हाई, उजियारी) जगत में छा रही है"।

(८२१) टीका। कवित्त (८४३–८२१ = २२)

बेटीको विवाह, घर बड़ो उतसाह भयो, किए पकवान नाना, कोठे मांझ धरे हैं। करै रखवारी सुत नाती दिये तारो रहैं, और ही लगाये तारो खोल्यौ नहीं डरे हैं॥ आये एह संत तिन्हे पोट बंधवाय दई, पायों यो अनन्त सुख ऐसे भाव भरे हैं। सेवा श्रीबिहारीलाल, गाई पाक सुद्ध ताई, मेरे मन भाई, सब साधु उर हरे हैं॥ ६२७॥ (६२९–६२५ = ४)

वार्तिक तिलक।

आपके गृहमें बेटीके विवाह का बड़ा उत्साह था, बरात के लिये घरके लोग पकवान मिठाई बनवा, कोठेमें रक्खे, ताला दे, पुत्र पौत्रादिक आपसे डरते, रक्षा करते थे। सन्तों की एक 'जमात' आई, आप गृहके लोगोंका भय छोड़, दूसरी कुंजी लगाकर ताला खोल, सन्तों को सब पकवान की गठरियां बंधवादीं; सन्त पाकर अति सुखी हुये; देकर आप भी सुखी हुये। सन्तों के प्रेमभाव से आप ऐसे भरे थे। श्री

बिहारीलाल जी की सेवा सप्रेम करते थे भोग के लिये पाक रसोई अति स्वच्छता से कर, सन्तों को प्रसाद पवाते थे। आपकी सचाई ने सब सन्तों का मन हरलिया और मेरे मनको अति प्रिय लगी इस्से मैंने गान किया है॥

श्रीरामदास बहुत हुए-एक ये, एक श्रीडाकौर के क्षेत्र के रहनेवाले, एक रामदास जी श्रीमीराबाई के पुरोहित, एक चौहान राजपूत, एक खमाच के रहनेवाले इत्यादि॥

(२६९) श्रीरामराय जी।

(८२२) मूल। छप्पै (८४३-८२२=२१)

बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि रति करी॥ भक्ति, ज्ञान, वैराग, जोग, अंतरगति पाग्यौ। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मतसर, सब त्याग्यौ॥ कथा कीरतन मगन सदा आनँद रस झूल्यौ। संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूल्यौ॥ वैर भाव जिन द्रोह किय, तासु पाग खसि भ्वैं परी। बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि रति करी॥ १९७॥ (२१४-१९७=१६७)

वार्त्तिक तिलक।

सारस्वत ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर, श्रीरामराय जी ने भगवत से प्रीति की। आपका हृदय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, इन साधनों से पग रहा था; और, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मत्सर, आदि दुर्गुणों को आपने त्याग किया था।

श्रीहरि कथा, कीर्तन, में मग्न होकर सदा आनन्द के रस से झूलते थे । जैसे सूर्य्य को उदित देख कमल फूलते हैं इसी प्रकार आप सन्तों को देख प्रमुदित प्रफुल्लित होते थे; आप से जिसने बैर भाव से द्रोह किया उसके सीस की पाग भूमि में गिर पड़ी ।

एक समय सज्जनों की सभा में एक धनी दुष्ट आप से द्रोह कर निन्दा करने लगा, उसकी पाग प्रभु प्रेरणा से अनायास भूमि में यों गिरपड़ी कि जैसे किसी ने धौल मारा हो । वह अति लज्जित हो, सभा से चलागया ।

एक रामरायजी थे, और एक राठौर खमालरतन के पुत्र रामरैन हैं ।

मूल १५२ पृष्ठ १२०२ । श्रीकन्हरदास जी के महा महोत्सव में, सम्वत १६५२ में, सब सन्तोंने मिलकर "गोस्वामी" की पदवी श्री १०८ नाभाजी को दी ॥ श्रीकान्हरदास पर श्रीसोभूराम जी की भी कृपा हुई थी ॥

(२७०) श्रीसोभूरामजी (मूल १९० । १९१ पृष्ठ १२९५) ब्राह्मण, श्रीहरिव्यास जी के शिष्य बड़े भक्त हुए । इनका एक मन्दिर अभीतक उड़ीसा जगाधरी के पास वर्त्तमान है । आपके नगर के पास श्रीयमुनाजी बहती थीं । एक बेर बाढ़से क्लेशित हो नगर के लोग आपके पास पहुँचे, आपने आकर श्रीयमुनाजी से विनय किया कि "माता पुत्रों को पालती है, न कि डुबाती है । यदि ऐसी ही रुचि हो तो कुदाल (फावड़े) से मैं इधर बढ़ने के लिये आप को मार्ग बनादूं ।" सुनके श्रीयमुनाजी प्रसन्न हो हट गईं । फिर उधर न बढ़ीं ।

वहांके नगरअधिपति (हाकिम) ने, शंखध्वनि सुन चाहा कि आप पर कोप करे । उसके मन की जानकर, आप प्रातःकाल उसके पास पहुँचकर बोले कि यदि मुझसे आपको क्लेश होता है, तो जहां आपकी इच्छा हो मैं चला जाऊं । " "हाकिम" ने क्षमा मांगी, विनय किया ।

(२७१) श्रीभगवन्तजी (श्रीमाधवदास के पुत्र)।

(८२३) मूल। छप्पै (८४३-८२३=२०)

भगवंत मुदित उदार जस रस रसना आस्वाद किय॥ कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यंतर भासै। दंपति सहज सनेह प्रीति परमिति परकासै॥ अननि भजन रसरीति पुष्ट मारग करि देखी। बिधि निषेध बल त्यागि, पागि रति, हृदै विशेखी॥ माधवसुत संमत रसिक तिलक दाम धरि सेव लिय। भगवंत मुदित उदार जस रस रसना आस्वाद किय॥१९८॥ (२१४-१९८=१६)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीभगवंत भक्तजी ने भगवत का सरस उदार यश अपनी जीभ से आस्वादन किया। श्रीकुंजविहारी जी की केलि आपके हृदय में सदा भासती थी, दंपति श्री राधा कृष्णजी का स्नेह और परम प्रेम प्रकाशित होता था; अनन्य रसरीति भजन के पुष्ट मार्ग को देखके उसीमें प्रवृत थे, और साधारण धर्म अर्थात् विधि निषेध कर्मों के बलको तजके, विशेष प्रीतिसे आप का हृदय पगा था; श्रीमाधवदास जी के पुत्र (भगवंत जी) ने सन्त सम्मत रसिक, कंठी तिलक धारण कर, भगवत भागवत सेवा ग्रहण किया।

(८२४) टीका। कवित्त (८४३-८२४=१९)

सूजा* के दिवान भगवंत रसवंत भए, वृन्दावन वासिन

की सेवा ऐसी करी है। बिप्र के गुसांई साधु कोऊ ब्रजबासी जाहु, देत बहु धन एक प्रीति माति हरी है ॥ सुनी गुरु देव, अधिकारी श्रीगोबिन्द देव, नाम हरि दास "जाय देखैं" चित धरी है। जोग्यताई सीवाँ प्रभु दूध भात मांगि लियौ कियौ उतसाह तऊ पेखैं अरबरी है ॥ ६२८ (६२८–६२६ = ३)

वार्तिक तिलक । * نواب شجاع الملک صوبہدار

श्रीभगवंतभक्त जी आगरे के सूबा* के मुख्य मंत्री, बड़े रसवन्त थे। वृन्दाबन बासियों की ऐसी सेवा की कि जो ब्राह्मण, गोशांई, सन्त, कोई 'ब्रजवासी' उनके पास जाता, उसको बड़ी मनोहर प्रीति रीति से बहुत धन देते थे।

एक समय श्रीगोबिन्ददेव जी के अधिकारी "श्रीहरिदास जी" भगवंत जी के गुरुदेव ने आपके यहां जानेका निश्चय किया वे श्रीहरिदास जी योग्यताई के सीमा ऐसे थे कि जिन से श्रीगोविन्द जी ने दूध भात मांगके भोजन किया। तथापि आपने श्रीभगवंत जी की भक्ति सुनकर देखने को उत्साह उत्कण्ठा किया। *नवाब शुजाउल्मुल्क सूबादार के दीवान्।

(८२५) टीका । कवित्त (८४३–८२५ = १८)

सुनी, गुरु आवत, अमावत न किहूं अंग, रंग भरि तिया सों, यों कही " कहा कीजियै ?" बोली " घर बार पट संपति भंडार सब भेटकरि दीजे, एक धोती धारि लीजियै ॥ " रीझे सुनि वानी, "सांची भक्ति तैंही जानी, मेरे अति मन मानी" कहि आखैं जल भींजिये । यही बात परी कान, श्रीगुसांई लई जान, आये फिरे वृन्दावन, पन मति धीजिये॥ ६२७ ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरु भगवान का आगमन सुन, आपके अंग में प्रेमानन्द समाता नहीं था; अपनी धर्म्मपत्नी से पूछा कि "कहो श्रीगुरु जी की भेट पूजा किस प्रकार करनी चाहिये?" वह उदार-अनुरागवती बोली कि "आप और मैं एक एक धोती धारण कर, और घरकी सब सम्पति वस्त्र भूषण द्रव्य सब का सब भेट कर देवें" ऐसे वचन सुन श्री भगवंत जी अति प्रसन्न होकर कहने लगे कि "सच्ची भक्ति एक तुमहीं ने जानी, तुम्हारा बचन मुझे अति प्रिय लगा," ऐसा कहते नेत्रों प्रेम का जल बहने से लगा।

यह बात कहीं श्रीगुसांई जी के कानों में पड़ी, दोनों का निश्चय जान, मार्ग से लौटके श्री वृन्दावन चले आये; और अपने शिष्य (श्रीभगवन्त जी) के प्रेम पन पर अति प्रसन्न हुये॥

(८२६) टीका। कवित्त (८४३-८२६ = १७)

रह्यौ उतसाह उर दाह कौ न पारावार, कियौ लै विचार, आज्ञा मांगि, वन आये हैं। रहे, सुख लहे, नाना पद रचि कहे, एकरस निर्वहे, ब्रजवासी जा छुटाये हैं॥ कीनी घर चोरी, तऊ नैकु नासा मोरी नांहि, बोरी मति रंग, लाल प्यारी हग छाये हैं। बड़े बड़ भागी, अनुरागी, रति जागी, जग माधव रसिक बात सुनो पिता पाये हैं॥६२८॥ (६२९-६२८ = १)

वार्त्तिक तिलक।

श्री भगवंत जी ने भी सुना कि "श्री गुरुस्वामी वृन्दावन

को लौट गये।" तब दर्शन का वह उत्साह चला गया! बरंच हृदयमें बड़ाही अनुताप हुआ!! वह ताप शान्त होने का बिचार कर, सूबे से आज्ञा लेकर श्रीवृन्दावन आ, श्रीगुरु देवका दर्शन पूजन कर सुखी हुये। कुछ दिन रह कर, अनेक पद बनाके प्रभु का यश गान किया; आपकी प्रीति रीति का एक रस निर्वाह हुआ।

फिर गुरू आज्ञा ले, आगरे को गये; वहां कईएक ब्रज वासी चोर कारागार (क़ैदख़ाने) में पड़े थे, उनको छुड़ादिये।

एक बेर और ब्रजवासी चोर भगवंत जी के गृह की सब वस्तु चुरा ले गये। परन्तु आपने दुःख स नाक न सकोड़ी बरंच अति आनन्दित हुये, क्योंकि मति प्रेम रंग से रँगी, और नेत्रों में लाल प्यारी की छबि छारही थी।

बड़े ही बड़भागी अनुरागी थे, रति प्रीति जगतमें जग-मगा रही है। अब भगवंत जी के पिता श्रीमाधव रसिक की अन्तकाल की बात सुनिये॥

(२७२) श्रीमाधवदास जी (श्रीभगवन्त जी के पिता)।

(८२७) टीका। कवित्त (८४३–८२७ = १६)

आयौ अंतकाल जानि बेसुधि पिछानि, सब आगरे तें लैके चले वृन्दावन जाइये। आए आधी दूर, सुधि आई बोले चूर ह्वैके "कहां लिये जात कूर?" कही "जोई ध्याइयै"॥ कह्यौ "फेरौ तन बन जायबेको पात्र नहीं, जरै वास आवै प्रियापियको न भाइयै"॥ जानहारौ होई, सोई जायगो जुगल पास, ऐसे भावरासि, ताही ठौर चलि आइयै॥ ६२९॥ (६२९–६२९ = ०)

वार्तिक तिलक ।

श्रीभगवंत जी के पिता श्रीमाधवदास जी के अन्त काल में, सब कोई बेसुधि जानके आगरे से पालकी पर वृन्दाबन को ले चले; जब आधे मार्ग में पहुँचे, तब आपको सुधि हुई; बड़े दुखित होकर लोगों से पूछा कि "अरे क्रूर लोगो ! मुझे कहां लिये जाते हो?" लोगों ने उत्तर दिया कि "जिसका आप नित्य ध्यान करते थे, उसी वृन्दाबन को लिये चलते हैं," आपने कहा कि "फेर ले चलो, यह शरीर श्रीवृन्दावन जाने का पात्र नहीं है, वहां जलावोगे तब प्रिया प्रितमको दुःसह दुर्गन्धि प्राप्त होगी, जो जानेवाला है, सो जीव जुगल के पास पहुँचेगा" । ऐसे भावके भरे श्रीमाधवदास जी आगरे में आकर शरीर छोड़ प्रिया प्रितम को प्राप्त हुये ॥

दो० । जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह ।
तुलसी ते प्रिय रामके, कानन बसहिं कि गेह ॥ १ ॥
भजन भरोसे राम के, मगहर तजे शरीर ।
अविनाशी के गोद में, बिलसैं दास कबीर ॥ २ ॥

(२७३) श्रीलालमति देवी जी ।

(८२८) मूल । छप्पै (८४३–८२८ = १५)

दुर्लभ मानुष देह कौ, "लालमती" लाहौ लियौ ॥ गौर स्याम सों प्रीति, प्रीति जमुना कुंजनि सों । वंसीवट सों प्रीति, प्रीति वृजरज पुंजनि सों ॥ गोकुल गुरुजन प्रीति, प्रीति घन बारह बन

सों। पुर मथुरा सों प्रीति, प्रीति गिरि गोवर्द्धन सों॥ वास अटल वृन्दा बिपिन, दृढ़करि सो नागरि कियौ। दुर्लभ मानुष देह कौ, "लालमती" लाहौ लियौ॥ १९९॥ (२१४–१९९ = १५)

यहाँ किसी छपी प्रति में एक छप्पय अधिक है; पर किसी लिखी प्रति में वह पाया नहीं जाता॥

वार्तिक तिलक।

देवी श्रीलालमती जी ने दुर्लभ मनुष्य देह का लाभ भले प्रकार लिया। क्योंकि गौर श्याम श्रीराधाकृष्ण जी में अति प्रीति थी; जमुना जी में और जमुना कूल के कुंजों में अति प्रीति, बंसीबट में और ब्रज रज के पुंजों में प्रीति, गोकुल में तथा गोकुल निवासी गुरूजनों में प्रीति, और सघन बारहो बन में प्रीति, पुर मथुरा से प्रीति, और गिरि गोवर्द्धन से प्रीति थी; उस नागरी ने अर्थात् प्रीति पथ प्रवीना ने इन सबों की प्रीति से युक्त अचल दृढ़ वृन्दावन वास कर, मनुष्य देह का लाभ लिया॥

(८२९) टीका। छप्पै (८४३-८२९ = १४)

कविजन करत विचार बड़ौ कोउ ताहि भनिज्जै। कोउ कहै अवनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै॥ सो धारी सिर सेस सेस शिव भूषन कीनौ। शिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनौ॥ रावन जीत्यौ वालि बालि राघो इक सायक दँड़े। अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारैं ते वड़े॥२००॥ (२१४-२०० = १४)

वार्तिक तिलक।

☞ यहां तक, गोस्वामी अनन्त श्रीनाभा जी महाराज इतने भक्तों सन्तों के नाम वर्णन कर चुके। अब कुछ माहात्म्य और अनुक्रमणिका लिखते हैं।

कविजनों ने बिचार किया कि जो कोई बड़ा हो उसी का सुयश हम भनैं (गान करैं)। (स०) "को बड़ है जग में धरणी धरणी रज ज्यों सिर लीन्हे अनन्त हैं। सोई भुजंग "मणीरसरंग"—अनंगअरी उर हार लसंत है॥ संभु स-शैल उठायो दशानन, रावनै वालि दबायो दुरंत है। राघव बालि विदारे तिन्हैं हिय धारे तेई सबते बड़े सन्त हैं "॥ श्रीअग्र दास जी कहते हैं कि "तीनों लोक में जो इतने बडे हरि को अपने हृदय में धारण किये हुए हैं, वेई सन्त सबसे बड़े हैं। उन्हीं का यश गान करना चाहिये "॥

(८३०) मूल। छप्पै (८४३-८३० = १३)

हरि सुजस प्रीति हरिदास कैं त्यौं भावै हरि

दास जस ॥ नेह परस पर अघट निवहि चारों जुग आयौ । अनुचर कौ उतकर्ष स्याम अपने मुख गायौ ॥ ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जगजानैं । पुर प्रवेश रघुवीर भृत्य कीरति जु बखानैं ॥ अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित हाथँ बस । हरि सुजस प्रीति हरिदास के त्यों भावै हरिदास जस ॥२०१॥ (२१४–२०१ = १३)

वार्तिक तिलक ।

श्रीभगवान हरि का सुयश सुनने में जैसे हरिदासों की प्रीति है, ऐसही अपने दासों का सुयश सुननेमें श्रीहरि की भी प्रीति है; श्रीभगवत् और भगवद्भक्तों का परस्पर अघट एक रस स्नेह कृतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंमें निबह आया, और जैसे भक्त लोग भगवत की कीर्ति कहते हैं तैसही भगवान् भी अपने भक्तोंकी कीर्ति कहते हैं, सो देखिये "भागवत एकादश" में उद्धव के प्रति श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने अनुचरों (भक्तों) के उत्कर्ष अर्थात् अतिशय यश अपने मुखसे गान किये हैं, और प्रभु श्री रघुवीर जी ने भी (जब वनसे आकर श्रीअवधपुर में प्रवेश करने लगे तब) श्रीभरत वशिष्ठ सुमंत्र आदिकों से अपने भृत्य हनुमत, सुग्रीवादि बानरों की कीर्ति श्रीमुखसे बखान किये हैं॥ इस प्रकार भगवतका भक्तों के विषय अनुराग और भक्तों की भगवत में प्रीति ओत प्रोत है सो सम्पूर्ण जगत जानता है।

श्रीअग्रस्वामी कहते हैं कि दासोंके गुण वर्णन करने से तथा सुनने से श्रीसीतापति जी नित्य ही बस होते हैं इस्से वर्णन करना चाहिये। (श्लोक भागवते)-

निरपेक्षं मुनिं शांत निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यंमूयेयेत्यं घ्रिरेणुभि॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं।
मदन्यंते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(तथा वाल्मीकिय रामायणे) सख्यंच रामः सुग्रीवे प्रभावञ्चानिलात्मजे। वानराणाञ्च तत्कर्म राक्षसानांचतद्बलं विभीषण संयोग माचचक्षेच मंत्रिणाम्॥

(चौपाई)-ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥ मम हित लागि जन्म इनहारे। भरतहुँते मोहि अधिक पियारे॥

(८११) मूल। छप्पै (८४३-८३१=१२)

उतकर्ष सुनत संतनि कौ, अचरज कोऊ जिनि करौ॥ दुर्वासा प्रति, स्याम दासवसता हरि भाषी। ध्रुव, गज, पुनि प्रहलाद, राम, शवरी फल साखी॥ राजसूय जदुनाथ चरण धोय जूँठ उठाई। पांडव बिपति निवारि, दियौ विष विषया पाई॥ कलि बिशेष परचौ प्रगट, आस्तिक ह्वैकै चित धरौ। उतकर्ष सुनत संतनि कौ अचरज कोऊ जिनि करौ॥२०२॥ (२१४-२०२=१२)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री भक्तमालकार स्वामी सबसे कहते हैं कि सन्तों का उतकर्ष अर्थात् उत्तम प्रताप प्रभाव प्रभु के दिये परचौ आदिक सुनके कोई आश्चर्य मत करो कि "यह कैसे हुआ? हमारे मन में नहीं आता!" देखो चारो युगों में भगवानने अपने भक्तों की रक्षा की, और उनके साथ अनेक आश्चर्य चरित्र किये । दुर्वासा जी से श्रीनारायण भगवान जी श्रीमुख से कहा कि "हे मुने! हम अपने भक्तों के आधीन, और उनके बस हैं"॥ और देखो ध्रुव जी पर कैसी कृपा की और गजराज की कैसी रक्षा की, प्रहलाद भक्त के लिये किस प्रकार खंभा फाड़के नृसिंह रूप धारण किया और श्रीरघुनन्दन जीने श्री शबरी जी पर कैसी कृपा करके फल खाये तथा उनके चरणों से जल शुद्ध किया, और माता के समान मानि परम पद दिया॥ ये सब भक्त साखी दे रहे हैं श्री युधिष्ठिर जी के राजसूय यज्ञ में श्रीयदुनाथ (कृष्ण) जी ने भक्तों के चरण धोये और जूँठे पात्र उठाये, फिर पाण्डवों की विपत्ति नास की, ऐसेही श्री चन्द्रहास भक्तने विष के पलटे बिषया स्त्री पाई, इस प्रकार कृत युग, त्रेता, द्वापर, के भक्तों की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है; और, कलियुग में बिशेष भक्तों के परचौ प्रगट जो हम (श्रीनाभास्वामी) ने गान किया है जैसे पृथ्वीराज को प्रभु ने द्वारका से आकर दर्शन दिया, नामदेव के हाथ से दूध पिया, कर्म्मा की खीड़ीचड़ी खाई, त्रिलोचन भक्त के घर में रहके चौदह महीने सन्त सेवा

की, सदावृति भक्त का बेटा मरगया जलादिया और फिर आगया; इत्यादिक (☞ और आज भीश्रीहरिकृपा विशेष अलौकिक अनुभूत हो ही जाती है,) सो श्रीहरिकृपा में आस्तीक होकर चित्त में विश्वास धारण कर सुनो और भक्ति पथ में चलो।

(ग्रन्थ फल स्तुति) (८३२) मूल। दोहा (८४३-८३२ = ११)

पादप पेंड़हिं सीचतें, पावैं अँग अँग पोष।
पूरबजा ज्यों बरनते, सब मानियो सँतोष। २०३

वार्त्तिक तिलक।

श्रीनाभा स्वामी जी ने जिन सन्तों के यश इस ग्रंथ में नहीं बरनन किये उनसे तथा आगे होने वाले सन्तों से प्रार्थना करते हैं। कि जैसे वृक्ष के मूल को सींचने से उसके स्कंध शाखा आदिक सब अंग पुष्ट और हरित होते हैं ऐसे ही पूरबजा की नाई अर्थात् दोपहर के पीछे की छाया जैसे छोटीसे बढ़ती जाती है वैसेही मैं अपनी प्रीति श्रद्धा बढ़ा के आपके पूर्वज श्रीआचार्य गुरुजन मूल पुरुषोंके यश जो मैंने वर्णन किये उसी में आप सब भी संतोष मानिये और मुझ पर प्रसन्न हूजिये।

(८३३) मूल। दोहा (८४३-८३३ = १०)

भक्त जिते भू लोक मैं, कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै, कहँ चिरि पेट समायँ २०४

(२१४—२०४ = १०)

वार्तिक तिलक।

भूलोक में जितने भगवद्भक्त हैं वे सब किस्से कहे जा सकते हैं! जैसे सब समुद्रों का जल पी लेनेकी कोई चिरि (चिड़िया) श्रद्धा करै तो क्या उसके पेटमें समा सकताहै?

(८३४) मूल। दोहा (८४३-८३४=९)

श्रीमूरति सबबैष्णवलघु दीरघगुणनिअगाध।
आगे पीछे बरनते, जिनि मानौ अपराध २०५॥
(२१४-२०५=९)

वार्तिक तिलक)

श्रीनाभा स्वामी जी सब वैष्णवों से प्रार्थना करते हैं कि "आप सब श्रीभगवत, शालग्राम जी की मूर्ति हैं, सो जैसे सालग्राम जी की मूर्ति बड़ी होय या छोटी होय पर उनका गुण माहात्म्य सबोंकाही अथाह है; ऐसेही, आपसबका गुण माहात्म्य अथाह है, किसीका आगे किसीका पीछे बर्णन हुआ है, सो कृपा करकेअपराध मत मानियेगा क्षमा किजियेगा।"

(८३५) मूल। दोहा (८४३-८३५=८)

फल की सोभा लाभ तरु, तरुसोभा फलहोय।
गुरु शिष्य की कीर्तिमैं, अचरज नाहीं कोय २०६
(२१४—२०६=८)

वार्तिक तिलक।

जैसे वृक्ष में लगे रहने से फलों को शोभा मिलती है, और फलों से वृक्ष को भी अधिक शोभा प्राप्त होती है ऐसे

ही गुरु शिष्य की कीर्तिमें है अर्थात् गुरू रूपी वृक्षमे फल रूपी शिष्य को कीर्ति शोभा प्राप्त होती है और फल रूपी शिष्यों से गुरू वृक्ष को अधिक कीर्ति शोभा मिलती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। दोनों पिछले छप्पै भी देखिये ॥

(८३६) मूल । दोहा (८४३–८३६ = ७)

चारि जुगन मैं भगत जे, तिनके पदकी धूरि।
सर्वसु सिर धरि राखिहौं, मेरो जीवन मूरि २०७
(२१४—२०७ = ७)

वार्त्तिक तिलक।

चारों युगों में जो भगवतभक्त हुए हैं और होंगे, उन सबों के चरणों की धूलि मैं अपने शीस पर धारण कर रक्खूंगा, क्योंकि वही मेरा धन प्राण सर्वसु और जीवन मूरि है।

(८३७) मूल । दोहा (८४३–८३७ = ६)

जग कीरति मंगल उदैं, तीनो ताप नसायँ।
हरिजन को गुण बरनते, हरि हृदिअटलबसायँ २०८
(२१४–२०८ = ६) इसे मनस्थ कीजिये ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीहरिजनों के गुण वर्णन करना परम साध्य है, जो कोई हरि भक्तों का गुण वर्णन करता है उसके तीनों ताप नास होते हैं और जगत में कीर्ति तथा मंगल का उदय होता है, और उसके हृदय में श्रीहरि अचल निवास करते हैं।

(८३८) मूल । दोहा (८४३-८३८=५)

हरिजन को गुण बरन ते, जो करै असुया आय।
इहां उदर बाढ़ै बिथा, औ परलोक नसाय २०९
(२१४-२०९=५)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरिजनों के गुण यश वर्णन करने में श्रीभक्तमाल की कथा कहते सुनते में, जो कोई दुष्ट आकर असूया (निन्दा कुतर्क) करता है, उसके पेट में, इस लोक में जलंधर, शूल, आदिक रोगों की व्यथाएँ बढ़ती हैं, और परलोक भी नष्ट हो जाता है ।

श्लोक। योहि भागवतां लोके उपहासं द्विजोत्तम ।
करोति तस्य नश्यन्ति धर्ममर्थो यशः सुताः ॥ १ ॥
निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनम् ।
पतन्ति पितृभिस्सार्द्ध महा रौरवसंज्ञके ॥ २ ॥

चौ०-होहिं उलूक सन्त निन्दारत। मोहनिशा प्रियज्ञानभाउगत॥

(८३९) मूल । दोहा ८४३--८३९=४)

जौ हरि प्राप्तिकी आस है, तौ हरिजन-गुनगाय।
नतरु सुकृत भुँजे बीज ज्यों, जनम २ पछिताय २१०

वार्त्तिक तिलक । इसे कभी नहीं भूलिये ॥

जो श्रीहरि रूप प्राप्ति होने की आशा किसी को होय तो श्रीहरि भक्तों के गुण यश सप्रेम गान करे इससे श्रीहरि अवश्य मिलते हैं। और जो श्रीभगवद्भक्तों के

सुयश का निरादर करके और अनेक सुकृत धर्म कर्मों का आत करता है तो, जैसे भूँजा बीज (अन्न) भूमि में बोने से जनमता नहीं है बरञ्च सड़ जाता है, ऐसे ही उसके सुकर्म व्यर्थ होजाते हैं। वह प्राणी जन्म जन्म पश्चात्ताप करता है और करेगा। प्रियपाठक ! यह समझने की बात है।

(८४०) मूल। दोहा (८४३–८४० = ३)

भक्तदाम संग्रह, करै, कथन स्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यौं, बैठे हरि की गोद॥२११॥
(२१४–२११ = ३)

वार्तिक तिलक।

श्री भक्तदाम ("भक्तमाल") इस ग्रंथ को जो कोई प्रेमपूर्वक कहैगा और सुनैगा तथा संग्रह अनुमोदन करैगा अर्थात् भाव और अर्थ विचार के आनन्दित होगा सो प्रभु के पुत्र के समान प्यारा होगा, और श्रीहरि के गोद (अंक) में बैठेगा।

यह श्रीनाभा स्वामी जी कृत आशिर्वाद है।

(श्लोक) तिष्ठते वैष्णवं शास्त्रं लिखितं यश मन्दिरे।
तत्र नारायणो देवः स्वयं वसति नारद ॥ १ ॥

(८४१) मूल। दोहा (८४३–८४१ = २)

अच्युतकुल जस यकबेरहुं, जाकीमति अनुरागि।
उनकी भक्ति * सुकृतको, निंहचै होय विभागि॥२१
(२१४–२१२ = २)

* भजन।

वार्तिक तिलक ।

इस अच्युत कुल (वैष्णवों) के यश में एक बेर भी जिसकी मति ने अनुराग किया, अर्थात् प्रेमपूर्व्वक कथन या श्रवण किया, सो अनुरागी इन सब सन्तों के भक्ति भजन सुकृत का विभागी होगा अर्थात् अवश्य भाग पावेगा ☛ इस्में सन्देह नहीं है ।

(८४२) मूल । दोहा (८४३–८४२ = १)

भक्तदाम जिन जिन कथी, तिनकी जूंठनि पाय ।
मों मति सार अक्षर है, कीनौं सिलौ बनाय २१३
(२१४–२१३ = १)

वार्तिक तिलक ।

जिन जिन महानुभावों ने भगवद्भक्तों के सुयश की माला कही है उन्हीं की जुठनि पायके मेरी मति सारांस उच्छ सिला बनाकर चुन बिन के दो चार अक्षर और मिला के भक्त माल बना दी है । (आपकी दीनता है)

(८४३) मूल । दोहा (८४३–८४३ = ०)

काहू के बल जोग जग, कुल करनी की आस ।
भक्तनाम माला अगर, उर(वसो)नारायणदास १२४
(२१४–२१४ = ०)

इतिमूल भक्तमाल

वार्तिक तिलक ।

किसी के योग का बल है और किसी के यज्ञ का बल है और किसी के कुल का बल है तथा किसी के अपनी करनी के फल की आसा है परन्तु मेरे तो योग यज्ञ कुल करनी किसी की भी आसा नहीं है, केवल यही आस है कि अनन्तश्री गुरू अग्र स्वामी की कृपा से मुझ नारायणदास (नाभा) के हृदय में श्रीअग्रदेव तथा यह भक्त–नाम–माल बसैं (या, बसे हैं) ॥

इति श्रीमद्रामानन्दीय वैष्णव श्री १०८ अग्रदेव शिष्य नाभाख्य श्रीनारायणदास ग्रथिता भगवद्भक्त रत्नमाला सटीक समाप्ता, श्रीभगवत्प्रीयताम् ॥

टीका कर्त्ता अब आगे वर्णन करते हैं कि–

(कबित्त) रसिकाई कबिताई जीन्हीं दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं । उर रंग भवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिंब भाय हैं ॥ रसिक समाज में बिराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं । जन मन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूं को मन हरि लीनौ तातैं राय हैं ॥ ६३० ॥

इन ही के दास दास दास प्रिया दास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है । गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन पर्‍यौ जाको कर्‍यौ बास वृन्दावन लीला मिलि

गाई है ॥ मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख संतनि के अंत कौन पावै जोई गावै हिय आई है । घट बढ़ जानि अपराध मेरौ क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मानि मैं सुनाई है ॥ ६३१ ॥

वार्तिक तिलक ।

श्री ५ प्रियादासजी कहते हैं कि—

मेरे गुरुदेवजी (श्रीमनोहरदास जी) स्वयं बड़े कवि और भारी रसिक तो थे ही, वरं ऐसे महात्मा थे कि आपने जिसको जिसको कृपा करके कविताई तथा रसिकाई दी, उस उसने भी पाई; तात्पर्य यह है कि ये दोनों वस्तु श्री गुरुदेव प्रसाद से मुझे भी मिली; हृदय में सरसता के नये नये उत्साह हुये । श्रीगुरुदेवजी के हृदय रूपी रंगभवन में श्री राधिकारमण जी इस प्रकार विराजते थे कि जैसे दर्पण रूपका प्रतिबिंब विराजता है । आप रसिक मण्डली के मध्य में विराजमान होकर जब रसराज (शृङ्गार) कहते थे, तब सब सज्जन सुनके आपके मुख की ओर देख देख सुख से फूल जाते थे । श्रीलालजी ने तो अपने जनों के मन हर लेनेसे " मनोहर " नाम पाया, पर मेरे गुरु भगवान जी ने श्रीमनोहर लाल का भी मन हर लिया, इससे सच्चे "मनोहरराय" थे ॥६३०॥

अब टीकाकार दो चरणों में तो परोक्ष और दो चरणों में प्रत्यक्ष विनय सज्जनों से करते हैं कि- जानिये कि इन्ही श्री मनोहरराय के दासों के दास का दास प्रियादास है कि जिसने श्रीभक्तमाल की यह सुख देनेवाली टीका बखान की है; और जिसका मन श्रीगोवर्द्धननाथ जी के हाथों में पड़ गया, इसीसे श्री वृन्दावन में वास करके यह भगवत भागवतों की मिलित लीला जिसने (मुझ प्रियादास ने) गान की । सो, मैंने जिस प्रकार सन्तों के मुख से सुना वैसाही अपनी मतिके अनुसार गाया । सन्तोंके चरित्र का अन्त कौन पा सकता है ? कि सम्पूर्ण गान करै, जितनी हृदय में आई उतनी कथा मैंने गान की (गाई) । सन्तों की इन कथाओं के कहने में जो घटी बढ़ी होगई हो, सो मेरा अपराध आप कृपा करके क्षमा कीजियेगा । क्योंकि साधुलोग केवल गुणोंही को ग्रहण करते हैं, अवगुण में दृष्टि नहीं देते । ऐसा समझके मैंने यथा मति कथा सुना दी है ॥ ६३१ ॥

क०। कीनी भक्तमाल सुरसाल नाभा स्वामी जू ने तरे जीवजाल जग जन मन जोहनी। भक्ति रस बोधनी सो टीका मति सोधनी हैं वांचत कहत अर्थ लागै अति सोहनी ॥ जो पै प्रेम लक्षना की चाह अवगाहि याहि मिटै उरदाह नेकु नैननिहूं जोहनी। टीका और मूल नाम भूल जात सुनै जब रसिक अन्यन मुख होत विश्वमोहनी ॥ ६३२ ॥

नाभा जू को अभिलाष पूरन लै कियो मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइ कै। भक्ति विस्वास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै संतनि लडाइ के ॥ संमत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर फालगुन ही मास वदी सप्तमी बिताइकै। नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै ॥ ६३३ ॥

अगिनि जरावौ लैके जल में बुड़ावौ भावै सूली पै चढ़ावौ घोरि गरल पिवायवी। वीछू कटवावौ कोटि सांप लपटावौ हाथी आगे डरवावौ ईति * भीति उपजायवी ॥ सिंघ पै खवावौ चाहो भूमि गड़वावौ तीखी अनी बिधवावौ मोहि दुख नहीं पायवी। ब्रजजन–प्रान कान्ह बात यह कान करौ भक्ति सो बिमुख ताको मुख न दिखायवी ॥ ६३४ ॥

इति "भक्तिरसबोधिनी"

* "ईति"–(श्लोक) अतिवृष्टिरना वृष्टिर्भूतका शलभा शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयः स्मृताः ॥ " १ ॥ अर्थात् अत्यन्त बर्षा का होना, वर्षा का नहीं होना, भूत उपद्रव, टिड्डियों का उपद्रव, और किसी चिड़ियाओं का उपद्रव, आपस का द्रोह, पराए किसी का अत्या चार, इन सातोंको, स्मृतिया कहती हैं कि, "ईति" यही हैं ॥

वार्तिक तिलक।

श्री नाभा स्वामी कृत सुन्दर रसाल भक्तमाल जो भक्तजनों के मन लुभ जाती है, और जिस को कथन, श्रवण करके अनेक जीव जगत से तर जातेमें हैं, उसी श्री भक्तमाल की यह "भक्तिरसबोधनी" टीका मति को शुद्ध करने वाली है। इसको पढ़कर अर्थ कहने में अतिही सुहावनी लगती है। जो कदाचित् किसी को प्रेम लक्षणा भक्ति की चाह हो, और इस टीका को मानसिक नेत्रों से देख के अवगाहै अर्थात् इसमें प्रवेश करे, तो अवश्य उसके हृदय की ताप मिट जाय, और प्रेमा भक्ति को प्राप्त हो। इसको सप्रेम सुनने में टीका और मूल का नाम भूल जाता है, यह भेद नहीं बूझ पड़ता कि हम मूल सुन रहे हैं कि टीका। और, भगवत रसिक अनन्यों के मुख से तो इसकी कथा विश्वमोहिनी हो जाती है॥ ६३२॥

श्री प्रियादास जी कहते हैं कि श्री नाभा स्वामी जी का अभिलाष मैंने पूर्ण किया। उस अभिलाष की साक्षी मैंने प्रथमही प्रारंभ में भले प्रकार गान करके सुना दी है। जिसको भगवत भक्ति में विश्वास हो, उसी को यह ग्रंथ प्रकाश करना (सुनाना) चाहिये; अभक्त अविश्वासी को नहीं; भक्तियुक्त को सुनाने से उसका हृदय प्रेम रंग से भींग जायगा तब प्रेम लाड़ लड़ाके सन्तों की सेवा करेगा।

प्रसिद्ध विक्रमीय सम्बत् १७६९ (सत्रह सौ उन्हत्तर) के फाल्गुण कृष्ण सप्तमी को टीका (भक्ति रस बोधिनी) पूर्ण हुई।

टीकाकार (श्री ५ प्रियादासजी) प्रार्थना करते हैं कि "हे श्रीनारायणदास जी स्वामी (श्री १०८ नाभा स्वामी)! अपनी सुखरास भक्तमाल लेके मुझ प्रियादास को अपना दास जानकर मेरे हृदय में बसके छा रहिये"॥ ६३३॥

अन्त में, श्री प्रिया हे प्रभो मेरे जन्म जन्मान्तरीय दुष्कर्म पातकों से जो आपकी इच्छा हो, तो चाहे मुझे अग्नि में जला दीजिये, जल में डुबा दीजिये, सूलीपर चढ़वा दीजिये, हलाहल बिष घोर के पिवा दीजिये, बहुत से बिच्छूओं

से कटवा दीजिये, कोटान सांप देहमें लपटवाके उनसे कटवा दीजिये,मत्त हाथी के आगे डलवा दीजिये, सिंहको खिलवा दीजिये, भूमि को खोदके मुझे गड़वा दीजिये, चोखी बरछी से बेधवा दीजिये, वा, भीती का भय उत्पन्न कर दीजिये, इन ग्यारह प्रकार के महा कष्टों से मुझे वैसा दुःख नहीं प्राप्त होगा; परन्तु 'हे भक्तजन प्राणनाथ ! करुणानिधे भगवान् यह मेरी प्रार्थना मन लगाके सुनिये और स्वीकार कीजिये, कि जो आप की भक्ति से विमुख हो उसका मुख मुझे कभी मत दिखलाइये' अर्थात् उसके मुख देखने ही से मेरी रक्षा कीजिये; और, संग संसर्ग की तो बातही क्या है ॥ ६३४ ॥

छप्पै—सखा रामरसरंगमणि, नाम जपत अति प्रीति नित ॥
गुरु प्रद सीताराम सरन गहि तिलक मालधर ।
अगुन सगुन बुधि बोध, राम जस ललित कवितकर ॥
तुलसिदास बालमीकि रचित रामायन नेही ।
अर्थ भाव बिद सुनत सरस-दृग, पुलकित-देही ॥
रूपकला कह, धाम बसि, सियपिय प्रीति अनन्य चित ।
सखा रामरसरंगमनि, नाम जपत, अति प्रीति नित १॥

क० । मूल भक्तमाल "नाभास्वामी जू" दयालु कृत, टीका रची "प्रियादास" भक्त गुण ग्राम है । कियो रामरसरङ्गमणि की सहाय पाय "रूपकला" अर्थ "भक्ति सुधास्वाद" नाम है ॥ सम्बत उनीस शत छूयासठ (१९६६) जानकि नौमी, बसिके प्रमोदवन अवध सु धाम है । चूक छमि सन्त, कहैं सुनैं कृपावन्त, मोहि देहिं सीताकन्त पद प्रीति अभिराम है ॥ १ ॥

जय जय श्री जानकी जानकीजीवन जी, जय जय, प्रणमामि प्रणमामि; तुम्हारी अनन्त कृपा के लिये अनेक धन्यवाद। युगल सरकार! जो तुम्हें अपने हृदय में धारण करते हैं, वे ही तीनों लोक में सब से बड़े हैं, और जैसे तुम्हारे भक्तों को तुम्हारा सुयश सुनना गाना प्रिय है, वैसे ही तुम्हें भी अपने भक्तों सन्तों के ही यश परम प्रिय हैं; अतएव कई वर्षों से श्रीभक्तमाल पर तिलक सीधा टेढ़ा कुछ करने का महामनोरथ था। परन्तु इतने बड़े और इतने भारी काम में स्वतन्त्रेण हाथ लगाने का साहस नहीं ही होता था।

तुम्हारी असीम कृपा से, परमहंस पण्डित श्री ६ गङ्गा दास[1] जो महाराज (बड़ी कुटिया), कृपासिन्धु स्वामी श्री ६ रामवल्लभाशरण[2] महाराज जी (श्रीजानकीघाट), पण्डित वर श्री ५ राम नारायणदास[3] जी (रामकोट), पुजारी श्री ५ श्यामसुन्दरीशरण[4] जी प्रेमसिन्धु (श्रीकनकभवन), और श्री ५ सियाशरण[5] जी मधुकर, विशेषतः इन पांच महानुभावों के पुनः पुनः उत्साह दिलाने से, इस अज्ञ अबला ने इस परमावश्यकीय में हाथ डाला ही, क्योंकि भजने के लिये तुम तथा तुम्हारे भक्त ही वस्तुतः सुलभ हैं।
निदान श्रीगणेशायनमः श्रीहनुमतेनमः कर चली ही तो।

तुम्हारी कृपा से, श्री ५ रामरसरङ्गमणि जी से इसमें बड़ी भारी सहायता प्राप्त हुई; श्री सीतारामीय मुन्शी तपस्वीराम जी की " रुमूज़े-मेह्र-व-वफ़ा " (رموز مہر و وفا) से

तथा पण्डित श्री भानुप्रताप तिवारी जी* (चनार) से भी सहायता मिली; श्रीसीतामढ़ी के बाबू बलदेवनारायणसिंह जी (वकील गया) की पूरी श्रद्धा हुई; एवं, तुमने भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्रजी के भ्राता श्रीराधाकृष्णदास जी, तथा विज्ञवर डाक्टर ग्रियर्सन महाशय (Dr. G. A. Grierson. C. I. E.) से भी सहायता दिलाई। इन सब के निमित्त, तुम्हें असंख्य धन्यवाद हैं। जयतु जयतु, नमामि नमामि।

(* जिन्होंने श्रीगोस्वामी कृत "विनय पत्रिका" तथा श्री कबीर "बीजक" को इङ्गरेज़ी में उलथा किया है ॥)

श्री युगलसर्कार! सन्तों का तो धन ही है किन्तु तुम्हें श्रीमद्भागवत तथा श्रीभक्तमाल जी से कैसा सम्बन्ध है, एवं इनके अनुमोदन करनेवालों पर तुम्हारी कैसी दृष्टि हुवा करती है, सो मर्म तो विरलेही जन तुम्हारी कृपा से जानते हैं। अस्तु।

यह प्रबन्ध पांच वर्ष में समाप्त हुवा; तुम्हारी प्रिय वस्तु तुम्हें सविनय समर्पित है; लो इसे अपनाओ। श्रीभक्तमाल को कृपा करके मुझ दीन से कहला लिया सुन लिया; अब दया करके कुछ और कृपा करो। सतसंग और प्रेमाभक्ति परा अनुरक्ति मांगनी तो " छोटा मुँह, बड़ी बात ", तथा " चहिये अमिय, जग जुरै न छांछी "। परन्तु–

चारि जुगन में भगत जे, तिनके पद की धूरि।
सर्बसु सिर धरि राखिहौं, मेरी जीवन मूरि ॥ १ ॥

काहू के बल जोग जग, कुल करनी की आस ।
भक्तनाममाला अगर, उर नारायणदास ॥ २ ॥
आप आपने ते अधिक, जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहिके पग की पानहीं, तुलसी तनु को चाम ॥ ३ ॥
रामभक्त प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥ ४ ॥

यह बुद्धि, इस में अटल प्रतीति, वास्तविक दीनता नम्रता, एवं अपने प्यारे प्यारियों की सहज स्तुति, चरणामृत तथा सीथ प्रसादी और अपने युगलनाम ("सीताराम") में विशुद्ध अविरल निष्ठा, अपनी इस चेरी को अनुग्रह करो । तुम्हारी जय हो; करुणामय शोभाधाम तुम बने रहो । श्रीजानकीजानकीवल्लभ जी! ललीलाल! तुम्हारे प्यारे प्यारियों की, तथा तुम्हारी, जय, जय, जय; नमामि नमामि; भजामि, प्रणमामि, नमामि नमामि ॥

श्रीजानकी नवमी } तुम्हारी रूपकला
सम्वत् १९६६, श्रीअयोध्या } (सीतारामशरण भगवानप्रसाद)

कलि अब्द ५०१०

इति श्रीभक्तमाल 'भक्तिसुधास्वाद' नाम तिलक समाप्त ॥

श्रीसीतारामार्पणमस्तु

श्रीसियसहचरी नारायणदास (श्रीनाभास्वामी) कृत

श्रीभक्तमाल

की

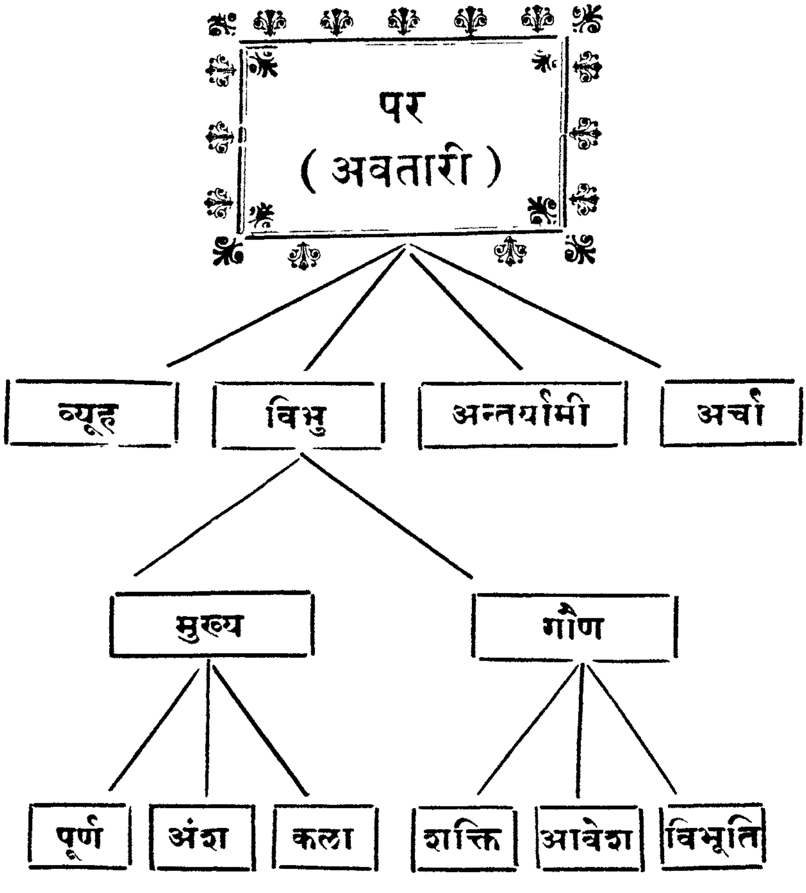
उपक्रमणिका,

वा

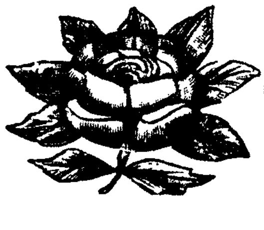
श्रीभक्तनामावली।

गोविन्द देव नारायण शरण, B. A.

(पृष्ठ ५८ मूल ५ छप्पय १ देखिये)



☛ Dr. Grierson's "Gleanings * from the Bhakta Mala."



Thanks

* इस पुस्तक को देखना चाहिये ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीश्यामनायकाय नमः । श्रीहंसकलायै नमः ॥

भक्तगुण ।

बाबू ज़ानकीशरण खेदनलाल लिखित ।

"सुनु मुनि सन्तन के गुण जेते ।
कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते ॥"

(१) भगवत नाम, मन्त्र, जाप
(२) भगवतपदकंज स्मरण
(३) श्रीगुरुहरि पदपद्म में परा-अनुरक्ति
(४) भागवतों (भक्तों) की सेवा
(५) भगवत धाम में निवास
(६) श्रीअयोध्या जी में प्रेम
(७) हरिलीला कथा श्रवण
(८) हरियश स्तुति कीर्तन
(९) भक्तों के यश कीर्त्तन
(१०) श्रीरूप का ध्यान
(११) सादर लीलादर्शन
(१२) सादर भक्तपदवन्दन
(१३) ऊर्द्ध्व पुण्ड तिलक करना
(१४) कण्ठी धारण (वैष्णववेष)
(१५) माला (सुमिरनी) फेरनी
(१६) भगवदायुध छाप धारण
(१७) प्रपत्ति शरण सूचक नाम
(१८) प्रपन्नता (शरणागति)
(१९) भागवत (भक्त) पद प्रेम
(२०) भगवत विमुखों से दूर रहना
(२१) कुसमाज से अलग रहना
(२२) बैरी से बैर तजना
(२३) वैष्णव भक्तसन्त का संग
(२४) विराग और उदासीन वृत्ति
(२५) भगवत भागवत चरणामृत पान सादर सप्रेम
(२६) श्रीमहाप्रसाद सेवन
(२७) शृङ्गार आदिक रस निष्ठा
(२८) जगत को निज प्रभुमय देखना मन क्रम वचन से
(२९) भागवतधर्मों का मनन
(३०) भजन, कैंकर्य, दास्य, सेवा
(३१) भगवत आस विश्वास
(३२) केवल एक भगवत आस और भरोस

(३३) आत्मनिवेदन सर्व समर्पण
(३४) जगत जाल का समेटना
(३५) परनिन्दा, परदोष, तजना
(३६) छल कपट कुटिलाई का त्याग
(३७) सरलता, सुशीलता, सत्य-व्यापार से भूषित होना
(३८) मितभाषिता और मिष्ट भाषण, मौन (चुप)
(३९) दीनता, नम्रता (वस्तुतः), विनय, कार्पण्य
(४०) मद, मान, अभिमान छोड़ना (मन वचन कर्म से)
(४१) क्रोध छोड़ना, क्षमा और सहनशीलता धारण करनी
(४२) लोभ से बचना, और सन्तोष धारण; प्रसन्नता
(४३) विषयवासना त्याग, निष्कामता, निर्मलता
(४४) परनारी को नागिनी सी देखना, कलंकमूल जानना
(४५) परवित्त को विषवत् जानना
(४६) दम्भ नहीं (मन कर्म वचन)
(४७) अहिंसा, कर्म मन वाणी से
(४८) दया, करुणा, कृपा, छोह
(४९) सच्चा बर्त्ताव
(५०) सत्य वचन (प्रियकरके)
(५१) कुतर्क हीनता
(५२) मोह परित्याग
(५३) भक्ति पक्ष का आश्रय
(५४) शौच विचार विवेक
(५५) अनघता, पाप से डर
(५६) जितेन्द्रियता और मितभोगिता धर्मानुकूल
(५७) मानदता अर्थात् औरों को मान देना कर्म वच मन
(५८) धीरता गम्भीरता भारीपन
(५९) विगत सन्देह होना
(६०) पर गुण सुनकर हर्षित होना
(६१) सब पर समदृष्टि, समता
(६२) भागवत व्रत क्रिया करना
(६३।६५) दम; नियम और संयम
(६६) मृत्युकाल को न भूलना
(६७) अमूल्य समय को न खोना
(६८) श्रद्धा (६९) अमाया
(७०) कुपथ को छोड़ना
(७१।७२) सुपथ चलना और चलाना

Thanks

(७३) दास्यनिष्ठा
(७४) शृङ्गारनिष्ठा
(७५) निर्जन एकान्तप्रियता
(७६) माधुर्य्य ऐश्वर्य्य, दोनों
(७७) सख्य निष्ठा
(७८) सौहार्द निष्ठा
(७९) वात्सल्य निष्ठा
(८०) अपने को जगत्पिता माता का पुत्र मानना
(८१) भजन में चित्त अचंचल, तथा मन को स्वाद और आनन्द आना
(८२) पवित्रता, शौच, शुद्ध-अन्तः करण होना
(८३) अल्पाहार, बिना भूख के भोजन न करना
(८४) शील, उदारता, दान, परहित
(८५) अपने दूषणों, अपराधों, और दोषों को समझना उनपर ग्लानी लज्या भय और पश्चात्ताप करना
(८६) सन्ध्या, अर्द्धरात्रि और ब्रह्ममुहूर्त्त को भगवत पद चिन्तवन ध्यान में अवश्य सुरति को लगाना
(८७) श्रवण, नयन, रसना और मन को विशेषतः रोकना
(८८) अन्तः करण को भगवत बिन अन्य किसी में रमने न देना
(८९) कर्म इन्द्रियां जो कर्म करें उसमें अन्तःकरणको लगने न देना स्वांस न खोना
(९०) भगवत कृपाओं को समझना और धन्यवाद करना गुण गाना
(९१) प्रियतम प्रभु से बातें किया करना
(९२) अपने तईं भजन पूजा वा किसी सुकर्म का कर्त्ता न जानना
(९३) निद्रा, आलस्य, प्रमाद, असावधानता त्याग, स्मरण भजन सतसंग में रमना
(९४) श्रीगुरु भगवत और भागवतों के सामने जो काम न किया चाहें उसको कदापि न करना
(९५) मरने की घड़ी जिसकी ओर चित्त जाना भला समझा जाता है उसी ओर सदा मन चित्त लगाना
(९६) इस घड़ी के कृत्य कर्तव्य को भविष्य पर न उठा रखना
(९७) मत्सर तज, अपने सरिस औरों क लिये चाहना
(९८) अहंता ममता मैं मोर हम हमार तजके, जो कुछ

जानते हैं उसको चरितार्थ करना, आचरण में
(९९) अष्टयाम मानस भावना
(१००) सुरति सदैव अचल वहीं
(१०१) गुप्त जाप और उच्च स्वर से श्री नामोच्चारण करना
(१०२) अभ्यास, जतन, श्रम
(१०३) शान्ति, निर्द्वन्द्वता, विरति
(१०४) प्रेमदशा, जैसे गद्गद वचन सजल नयन &c. इत्यादि
(१०५) विप्रचरण अति प्रीति ॥
(१०६) श्रीसरयू गंगा यमुना महिमा

(१०७) कवित्त–'श्रद्धा' ई फुलेल औ उबटनौ 'सरवन कथा' मैल अभिमान, अंग अंगनि छुड़ाइये। 'मनन' सुनीर, अन्हवाइ अंगुछाइ 'दया' 'नवनि' वसन, 'पन' सोंधो, लै लगाइये ॥ आभरन 'नाम' 'हरि' 'साधुसेवा' कर्णफूल, 'मानसी' सुनथ, 'संग' अंजन, बनाइय। "भक्ति महारानी" को सिंगार चारु, बीरी 'चाह', रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये ॥ १ ॥

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करैं, हरैं जगपाप, जापहियो परिपूर है। जानि सुखमानि हरि सन्त सनमान सचे, बचेऊ जगत रीति, प्रीति, जानी मूर है ॥ तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधि सकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है। शोभित तिलक भल, माल उर राजै, ऐपै 'बिना भक्तमाल भक्ति रूप अति दूर है' ॥ २ ॥

(१०८) श्रीभक्तमाल, श्रीभागवत, श्रीनारदभक्तिसूत्र, श्रीराम चरित मानस, श्रीजानकीस्तवराज, श्रीरामस्तवराज, भगवद्गीता श्रीवाल्मीकीय रामायण, &c. &c., इत्यादि को पाठ करना तथा सुनना सुनाना ॥

(चौपाई)

एवमादि हरिजन गुण जेते। कहि न सकहिं श्रुति शारद तेते ॥
जलसीकर महिरज गनिजाहीं। हरिजनगुण नहिं बरनि सिराहीं ॥

इति श्री सियसहचरी नारायणदास (नाभास्वामी) कृत श्रीभक्तमाल की उपक्रमणिका ॥

१९११ } दीन जानकीशरण खेदनलाल

॥ श्रीः ॥

श्रीसीतारामकृपा से निम्नलिखित सज्जनों का यह दीन बड़ा कृतज्ञ है कि जिनके ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिली है:—

१.	श्रीप्रियादास जी कृपालु	भक्तिरसबोधिनी	१७६९
२.	श्रीतपस्वीराम जी सी० रा०	रमूज़े मह्र व वफ़ा	१९३४
३.	श्रीवैष्णवदासजी वृन्दावनीय	टिप्पनी, श्रीवेंकटेश्वर	१८००
४.	श्रीतुलसीराम जी साहिब	भक्तिप्रदीप	१९११
५.	पं० श्रीज्वालाप्र० मिश्र जी	हरिभक्तिप्रकाशिका, वें०	१९५६
६.	Dr. G. A. Grierson, C. I. E., M. R. A. S.	Gleanings from Bhakta Mal	१९६६
७.	श्रीप्रतापसिंह जी	भक्तकल्पद्रुम	१९५८
८.	राजा श्रीरघुराजसिंह जी	रामरसिकावली, वें०	१९२१
९.	श्रीयुगलप्रिया जी	रसिकभक्तमाला	१९२५
१०.	श्रीहरिश्चन्द्रजी, भा०	भक्तमाल छप्पय	१९३०
११.	श्रीध्रुवदास जी	भक्तनामावली	——
१२.	श्रीराधाकृष्णदास	नामावली	१९५८
१३.	श्रीकीर्त्तिसिंह जी	गुरुमुखी भक्तमाल	——
१४.	मु० गुमानीलाल	फ़ारसी भ० मा०	१८९८
१५.	लालचन्द्र जी	भक्तउर बसी	१८००
१६.	पं० श्रीभानुप्रतापतिवारीजी	भ० मा० (चनार, मिर्ज़ापूर)	१९६५

दीन सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

॥ श्रीः ॥

(सन्त अवतार सम राम भगवन्त के)

क० । जैसे प्रभु मानुष बपुष धरि लीला करैं, तैसे सुखशीला है चरित सब सन्तके । सठन की सिला सम कुमति सुशीला करैं, भंजैं भवचाप ज्यों कुदोष जे दुरन्त के ॥ बिमल बचन धनु बान हीं ते जातुधान काम कोह लोभ मोह मारैं उर अन्तके । चारो जुग जीवन उधारकारि "रसराम" सन्त अवतार सम राम भगवन्त के ॥ १ ॥ (सन्त बिन कैसे कोऊ जानै भगवन्त को) । क० । माया को देखाय कै छिपाय भगवन्त जब तब सन्त बुद्धिसौं बतावत अनन्त को । धारैं भगवन्त जब मानुष बपुष तब सन्त भगवन्त कहि गावैं रसवन्त को ॥ ईश्वर न कोई जीव नश्वर कुवादी कहैं तिन्हैं सन्त जीति वाद थापैं सीताकन्तको । नाम को सुनाय के जनावैं रसराम रूप सन्त बिन कैसे कोऊ जानै भगवन्त को ॥ २ ॥ क० । नाम रूप लीला धाम निष्ठा रसरंगभनी भनी नौधा भक्ति परा प्रेमा रस पांच है । गाई है सँचाई भरी कथा सन्त सेविन की जिनको सुनत साधु सेवा मन रांच है ॥ प्रेमिन को पूरो प्रेम नेमिन को मेह नेम कान को करत मिटै मद मान आंच है । पागि प्रीति आभा दियो नाभा जू अलभ्य लाभा भाष्यो भक्तमाल मध्य भक्तिरूप सांच है ॥ ३ ॥ दोहा—भवसागर भवरत्न बहु भक्त सु तिनकी माल ॥ नाभा जू आभा भरी, अर्पे हरिहिं बिशाल ॥ १ ॥ हरि भक्तनि हिय बीस धरे, माला कंठ अमोल ॥ धन्य सुजन रसरङ्गमणि बाचहिं सुनहिं अमोल ॥ २ ॥

॥ श्रीः ॥

श्री श्यामनायकायै नमः । श्री हंसकलायै नमः ॥

☞ आरा शाहाबाद के वकील बाबू ब्रजनन्दनसहाय (ब्रजवल्लभ) लिखित ।

गोस्वामि श्री १०८ नारायणदास जी
(श्री १०८ नाभा स्वामी)

(दो०) भक्तमाल आचार्य्यवर, श्री नाभा पद कंज ।
भवसागर दृढ़ नाव बड़, बन्दौं मङ्गल पुंज ॥ १ ॥
" श्री नाभा नभ उदित ससि, भक्तमाल सो जान ।
रसिक अनन्य चकोर है, पान करैं रसखान" ॥२॥

(छप्पै) "कमलनाभ अज विष्णुके, त्यौं अग्र नाभ नाभा भयो ॥
उन हरि आज्ञा पाय सकल ब्रह्माड उपायो ।
इन गुरु आज्ञा पाय भक्त निर्णय को गायो ॥
चार युगन के भक्त गुणन की गूंथी माला ।
अंगहिं अंग विचित्र बनी जू परम रसाला ॥
लघुमोहन अचर कहा, सीतापति जापै जयो ।
कमलनाभ अज विष्णुके, त्यौं अग्रनाभ नाभा भयो ३

(क०) नाभा जू विसाल बुद्धि आज्ञा अग्र धारि सिर, विरचे कराल शस्त्र काटन को भ्रम जाल । पढ़त अनन्द बाढ़ै रसिक सु भक्त हिये, सरल मनोहर सुखद कविता रसाल॥भने ब्रजवल्लभ अविद्या कर अन्धकार

करे दूर, सन्तन को सहज करे निहाल। प्रेम दीप बारे उर, पतित उधारे कोटि, काग ते मराल करे, साँची ऐसी भक्तमाल ॥ ४ ॥

(स०) भक्तन को यश पुंज बिटोर सु नाभा अलौकिक माला बनाये। ताकर टीको कियो प्रियादास जू सन्तन को अति ही मन भायो ॥ त्यों ब्रजवल्लभ रूपकला सिय किंकरि 'भाश' अनूप लगायो। "भक्त सुधा बिंदु स्वाद" ललाम सु प्रेमिन को मन मोद बढ़ायो ॥ ५ ॥

(सं०) चारु सरोज सो छप्पै सुहावन सन्तन को मन भृङ्ग लुभायो। सादर पान करे रसको ज्यों चकोर मयङ्क के नेह भुलायो ॥ प्रेम पराग को त्यों ब्रजवल्लभ गन्ध मनोहर है जग छायो। पावनि भक्तन को गुन गाथ की माला अनूपम नाभा बनायो ॥ ६ ॥

(दो०) "भक्त नारायण भक्त सब, धरे हिये दृढ प्रीति।
बरने आछी भाँति सो, जैसी जाकी रीति ॥"

("श्रीहनुमत जन्म विलास" में नामानुरागी मुन्शी रामअम्बे सहाय जी ने लिखा है कि—)

। चौपाई ।

"एक दिवस, हरि हरिरस पागे। योगाभ्यास करन तहँ लागे॥

नैन मूंदि बैठे गुणसागर । तपानल जनि कपिवंश दिवाकर ॥
बह्यो प्रस्वेद शरम अति कीन्हा । मुखभेव गिरिनायक चीन्हा ॥
सो श्रमबिन्दु ईश गहि लीन्ही । जगतारनकी इच्छा कीन्ही ॥
शिवानाथ तेहि राख्यो गोई । यह प्रसङ्ग जाना नहिं कोई ॥
हे मुनिगण ! है तपबलसाला । यहां भविष्य सुनो इतिहासा ॥
ह्वैहै जब कलिकर परचारा । छीजै भक्तिभाव आचारा ॥
तब गिरीश सो बिन्दु सुहाई । नभमग तजिहिं देव सुखदाई ॥
(दोहा) गहै भूमि वरबिन्दु सो, हरि जन काज विचार ।
उपजै ताते रूप शुभ, भक्ति योग आगार ॥
नैन मूंदि बैठे कपी, यहिते होइ अनैन ।
"हनुमतवंशी" विमल मति, योग भक्ति तप ऐन ॥
सो अयोनिजा, योगधन, जाको वर्ण न ज्ञात ।
स्वयं सिद्ध, पातक विगत, जग में हो विख्यात ॥
'भक्तमाल' अद्भुत रचै, पूरै जन मन काम ।
'नाभा, नाभा' सब कहैं, 'नभोभूज' हो नाम ॥"

स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी महाप्रभु के प्रशिष्य तथा श्रीअनन्तानन्द जी के शिष्य श्रीकृष्णदास पैहारी जी के कृपापात्र स्वामी श्री १०८ अग्रदास जी तथा श्रीकील्ह जी ने एक दिन किसी वन के मध्य मार्ग में एक पांच वर्ष के अन्धे बालक को देखा, जिसके माता पिता कौन थे सो कैसे जाना जाय ? पर यह निश्चय होता है कि महाघोर अकाल के कारण उन्होंने उन्हे अनाथ छोड़कर चल देवे

का साहस किया अतएव निर्दयी कहलाना अङ्गीकार किया।

महात्माओं ने उन्हें वानर वा हनुमान वंशीय लिखा है और महाराष्ट्र वा लांगूली ब्राह्मण श्रीरामदास जी के भाई के वंश में उनका उद्भव वर्णन किया है; किसी किसी ने उन्हे 'डोम' जाति का लिखा है, जो जाति इस देश में उत्तम भाट, चारण, तथा कत्थक की सी है (इधर का सा नीच बँसफोड़ डोम नहीं); किसी महात्मा ने उन्हे अयोनिजा लिखा है और श्रीहनुमान जी का अंशावतार बताया है। किसी ने ब्रह्मा जी के अवतार श्रीलाखा भक्त की जाति का कहा है। (पृष्ठ ५१।५९ देखिये) अस्तु, श्रीहरि भक्तों की जाति पांति वक्तव्य नहीं है।

उक्त दोनों महानुभाव वहां रुके। असहाय बालक देख उन्हे "लागि दया कोमल चित संता" अतएव उनलोगों ने कृपा दृष्टि की। सच कहा है "सन्त विशुद्ध मिलहिं परि ताही। चितवहिं राम कृपा करि जाही॥" दोनों महानुभाव ने पूछा "बालक! तुम कौन हो?" उत्तर मिला "महाराज! आप इस पंचभूत रचित क्षणभंगुर शरीर को पूछते हैं? वा परमात्मा के करुणापात्र अविनाशी जीवात्मा को?" (पाठक! होनहार विरवान के होत चीकने पात)। "शारद दारु नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तर्यामी।"

उक्त महानुभावों ने उन पर श्रीहरि कृपा होने वाली समझ, अपने कमण्डलु के जल के छींटे से बालक की आंखों में ज्योतिप्रदान किया। और अपनी "गलता" गादी

में लाकर श्रीराम कृपा से सन्तों की सीथ प्रसादी तथा चरणामृत पाने को बताकर, भजन के समय पंखा करने की सेवा दी, नारायणदास 'नाभा' पुकारे जाने लगे। सन्तों के चरणोदक तथा सीथ प्रसादी से जो पाला जाय एवम् महानुभाव की सेवा कैंकर्य्य का सौभाग्य जिसको हो उस भागवतकृपापात्र महाभाग्यभाजन का कहना ही क्या है। ऐसे भागवत कृपा की जय तथा हरि कृपा की बलिहारी!

एक समय श्रीअग्रस्वामी जी मानसी भावना में निमग्न थे, और आप (श्री ६ नाभा जी) नियमानुसार पंखा झल रहे थे। इतने में श्रीस्वामी जी महाराज के एक चेले ने, (जो समुद्र पर एक जहाज में जा रहा था) जहाज के रुक जाने से विकल हो आरत वाणी से पुकारते हुए, श्रीअग्रदेव महाराज का ध्यान किया। श्रीराम कृपा भाजन नाभा जी अपने महा प्रभु जी की अनुपम रहस्य श्री सेवा में यों विघ्न आ पड़ना सह न सके; कृपा पूर्वक उसी पंखे के वायु बल से उन्होंने जहाज को चला दिया; और श्री महाराज जी से प्रार्थना की कि प्रभो! दीनबन्धो! वह बोहित तो आपकी कृपा से ही आपदा से बचकर कहीं का कहीं निकल गया और दूर जा रहा; अब आप, अपने श्री चित्त को उधर न ले जाकर, शान्ति पूर्वक स्वकार्य्य में तत्पर रहें और पुनः उसी अनुपम भावना में लगें। यह सुन नेत्र उघार उनकी ओर निहार, श्रीस्वामी जी ने पूछा "कौन बोला?" आपने (श्री १०८ नाभा जी ने) हाथ जोड़ विनय किया और कहा कि

"नाथ ! वही शरणागत बालक, जिसे आपने सीथ प्रसाद से कृपा पूर्वक पाला है।"

इतना सुनते ही आप नवीन आश्चर्य में आकर विचारने लगे कि "भगवत् भागवत् कृपा से इसकी यहां तक पहुँच हो गयी !" और साथ ही श्रीस्वामी जी के मन में आनन्द भी छा गया कि अपना लगाया वृक्ष यों फूलने फलने लगा।

श्री १०८ अग्रदेव जी ने आपके हाथ से पंखा ले लिया और यह आज्ञा दी कि "वत्स ! तुझ पर भक्तों सन्तों का अनुग्रह और प्रभाव हुआ; अतः तू श्रीहरिभक्तों का चरित्र गान कर।"

आपने सादर निवेदन किया "प्रभो ! भगवद्गुण तो उलटा सीधा गा लेना इतना कठिन नहीं है, पर भागवतों का यश वर्णन करना तो महा कठिन है।" श्री १०८ स्वामी जी महाराज ने समझाया कि "पुत्र ! जिनने तुझे सागर में बोहित और मेरे हृदय में श्रीस्वरूप दिखा दिया, वे ही तुझे अपना तथा और और महानुभावों का अलौकिक एवम् पवित्र चरित्र दिखा देंगे। सो तू अब भागवत यश कह ही चल।"

ऐसा वरदानात्मक श्रीवचन सुनके आप उद्यत होगये। और आपने "श्रीभक्तमाल" को २१४ छन्दों में रच डाला। जिसमें चारों युगों के भक्तों का पुनीत यश वर्णित है।

श्रीकान्हरदास जी के भण्डारे महामहोत्सव में (पृष्ठ १२०२।१२०८) सम्वत १६५२ में बहुत महानुभाव इकट्ठे थे। वहीं सबों ने मिलकर आपको "गोस्वामी" की पदवी दी।

श्रीभक्तमाल जी*का बनना विज्ञजनों ने (" सम्वत १६३१ के पीछे और सम्वत १६८० के पहले"), १६४९ के लगभग निश्चय किया है । आपके परम धाम गमन का समय महात्माओं से १७१९ सुना गया है । श्रीप्रियादास जी ने जो श्रीनाभा स्वामी जी की आज्ञा से १७६९ में टीका बनाई; वह आज्ञा, (महात्माओं से यह सुना है कि) (पचास वर्ष पीछे) " स्वप्न में हुई थी । "

श्रीभक्तमाल ग्रन्थ की प्रशंसा किस से हो सकती है । इस के विषय में जो कुछ कहा जाय वह थोड़ा ही है । " बिना ' भक्तमाल ' भक्तिमणि अति दूर है ' । " एक तो इस में भक्तों की गुणावली है (दो०) सब सन्तन निर्णय कियो, श्रुति, पुराण, इतिहास । भजबेको दो सुघर हैं, की हरि, की हरि दास"; तिसपर इसके रचयिता स्वयम् परम भक्त ठहरे।

पद्य होने के कारण श्री प्रियादास जी की टीका सर्वसाधारण की समझ में नहीं आती थी अतएव श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी ने सन्त चरित जानने की सुगमता के लिये तथा अपने आनन्द के निमित्त गद्य में "भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद" नामक तिलक लिखा है। यह पुस्तक अपने नामके अनुसार ठीक बनी है तथा पाठकों के हृदय में पीयूषधारा प्रवाहित करती है । इस में सन्देह नहीं । भक्ति तथा प्रेम की जय मनाता हुआ मैं इस प्रबन्ध को समाप्त करता हूं ।

(* दोहे १७, कुंडलिया १, छप्पै १९६ कुल छन्द २१४)

आरा, शाहाबाद । ब्रजनन्दन सहाय (ब्रजवल्लभ)

॥ श्रीः ॥

श्रीप्रमोदवन बड़ी कुटिया के साकेतवासी महानुभाव स्वामी श्री १०८ रामचरणदास जी महाराज के शिष्य

पण्डित श्री५ रामहितोपाध्याय जी लिखित।

श्रीसीतारामकृपा से सम्वत १९६५ के वसन्त ऋतु में श्रीमद्भक्तमाल की कथा, श्रीजानकीघाट मणिराम जी की छावनी में, परम योग्य महानुभाव श्री५ रामवल्लभाशरणजी महाराज ने कही। श्रोताओं की जो महा भीड़ होती थी कही नहीं जा सकती। प्रायः सब महात्मा पहुँचते थे।

एक तो महाभागवतों के चमत्कृत सुयश की कथामाला, दूसरे परम प्रेमी महानुभाव पण्डितवर प्रभावयुक्त वक्ता की अनूठी वक्तृता, तिसपर आपका वह प्रियतर महामधुर स्वर; भला वह समाज सुख लिखने में कहां आसकता है? सच है कि "गिरा के श्रवण नहीं और कानों के वाणी नहीं"।

हां, जिन भाग्यभाजन ने ग्वालियर लश्कर के श्रीपुरुषोत्तमभट्ट जी के मुखारविन्द से श्रीभागवत कभी सुनी होगी, वेही विवेकी रसिक जन इस पियूष प्रवाह के अलौकिक स्वाद को भी कुछ समझ सकते हैं, वा जिन श्रीकृपाभाजन को स्वतः अनुभव हुवा।

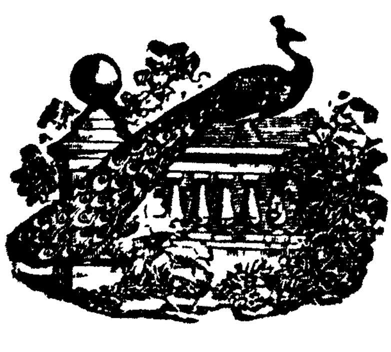
इस समाज के सुख की वार्त्ता श्रीअयोध्या जी के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी जब तक कि श्रीसरयूमहारानी जी की धारा॥

श्रीअयोध्याप्रमोदवन १९६६ रामहितोपाध्याय

॥ श्रीः ॥

श्रीभक्तमाल सटीक ।

(भक्तिसुधास्वाद तिलक सहित)



श्रीगणेशायनमः । श्रीसरस्वत्यैनमः

१	२	३	४	५
७	"द्वादशभक्तप्रधान"	....		७८
	श्रीब्रह्मा जी	१		८०
	श्रीनारद जी	२		८१
	श्रीशिव जी	३	२०	८१
	श्रीसनकादिक चारों भाई (४।५।६।७)	७		८५
	श्रीकपिलदेव जी	८		८६
	श्रीमनु जी महाराज	९		८३
	श्रीप्रल्हाद जी	१०		८६
	श्रीजनक जी महाराज	११		८९
	श्रीभीष्म जी	१२		९०
	श्रीबलि जी	१३		९१
	श्रीशुकदेव जी	१४		९१।९२
	श्रीधर्मराज प्रसंग में कथा अजामेलकी	१५ १६	२३	९३
८	"श्रीनारायण पारषद" सोलह	१७ ३२	२५	९६
९	"श्रीहरिवल्लभ" १६+२६=४२		२६	९९
	श्रीलक्ष्मी महारानी जी	३३	....	९८ १०१
	श्रीगरुड़ जी	३४	....	१०२
	श्री १०८ हनुमान जी	३५	२७	१०३
	श्रीजाम्बवान जी	३६		१०७
	श्रीसुग्रीव जी	३७		१०८
	श्रीविभीषण जी	३८	२८	१०८
	श्रीसबरी जी	३९	३१	११३

इति श्रीभक्तमाल के सत्य-युग त्रेता द्वापर के भक्तों के नामों की उपक्रमणिका

☞ सतयुग, त्रेता और द्वापर के ३८० भक्तों के नाम २७ वें मूल, और १२५ वें कवित्त तक हैं और उनमें से १८० का वर्णन भी ॥

मूल	२७
टीकाकवित्त	१०५
	=१३२

पृष्ठ २७३ तक

किस मूल में कितने ?

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
१।२ ३।४	मंगलाचरण	....	१७	१८	१
५	अवतार	....	१८	३६	१
६	श्रीचरण चिन्ह	....	१९	८	२
७	१२	१२+१	२०	१८	५
८	१६	१	२१	१०	१
९	४४	२६	२२	२०	५
१०	३०	२०	२३	१६	१
११	२१	२१	२४	७	१
१२	४३	३०	२५	९	१
१३	११	१०	२६	१	१+१
१४	९	८	२७	८	१
१५	१६	१			
१६	२७	२७+२	जोड़	३८०	१८०

और

२८ वें मूल पृष्ठ ३७५ से १२६ वें कवित्त से

कलियुग प्रारंभ ॥

अथ कलियुग के भक्तः-

किस मूल में कितने ?

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
कलियुग			५०	६	६
२८।२९ ३०।३१	१३	४	५१	४	४
			५२	६	६
३१।३२	५	५	५३	३	३
३४	२	२	५४	४	४
			५५	२	२
३५।३६	३०	१७	५६	१	१
३७।३८	८	८	५७	२	२
३९।४१	२३	३	५८	२	२
४२	१	१	५९	१	१
			६०	१	१
४३	१	१	६१	१	१
४४	१	१+१	६२	१	१
४५	२	२	६३	१	१
४६	१	१	६४	१	१
४७	१	१	६५	१	१
			६६	१	१
४८	४	३	६७	२	२
४९	३	३	६८	१	१
तीसरी माला पृष्ठ ५७८ तक ।			६९	२	२

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
७०	१	१	९३	१	१
७१	१	१	९४	१४	९
७२	२	२	९५	१	१
७३	१	१	९६	१८	२
७४	१	१	९७	१७	३
७५	१	१	९८	१८	३
७६	१	१	९९	२७	१
७७	१	१	१००	२६	१
७८	१	१	१०१	१४	१
७९	१	१+१	१०२	१६	१
८०।८१	७	२	१०३	२१	२
८२	३	२	१०४	२९	१
८३	१	१	१०५	२२	१
८४	१	१	१०६	९	१
८५	१	१	१०७	१	१
८६	१	१	१०८	१	१
८७	१	१	१०९	१	१
८८	१	१	११०	१	१
८९	२	२	१११	१	१
९०	१	१	११२	१	१
९१	१	१	११३	१	१
९२	१	१	११४	१	१

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
११५	१	१	१३७	१	१
११६	१	१	१३८	१	१
११७	१२	२	१३९	१५	३
११८	१	१	१४०	१	१
११९	१	१	१४१	१	१
१२०	१	१	१४२	१	१
१२१ }	१	१	१४३	१	१
१२२ }			१४४	१	१
१२३	१	१	१४५	१	१
१२४	१	१	१४६	२२	१
१२५	१	१	१४७	२३	१
१२६	१	१	१४८		१
१२७	१	१	१४९	१३	१
१२८	१	१	१५०	१६	} १
१२९	१	१	१५१	९	}
१३०	१	१	१५२	१	१
१३१	१	१	१५३	१	१
१३२	१	१	१५४	१	१
१३३	१	१	१५५	१	१
१३४	१	१	१५६	१	१
१३५	१	१	१५७	२	२
१३६	१	१	१५८	१०	१

मूल	भक्त	वर्णन	मूल	भक्त	वर्णन
१५९	१	१	१८०	१	१
१६०	१	१	१८१	८	१
१६१	१	१	१८२	१	१
१६२	१	१	१८३	१	१
१६३	१	१	१८४	१	१
१६४	१	१	१८५	१	१
१६५	१	१	१८६	१	१
१६६	१	१	१८७	१	१
१६७	१	१	१८८	१	१
१६८	१	१	१८९	१	१
१६९	८		१९०	२	२
१७०	२१	१	१९१	१	१
१७१	१	१	१९२	१	१
१७२	१	१	१९३	१	१
१७३	१	१	१९४	१	१
१७४	१	१	१९५	१	१
१७५	१	१	१९६	१	१
१७६	१	१	१९७	१	१+१
१७७	१	१	१९८	२	२
१७८	८	१	१९९	१	१
१७९	१	१	२०० – २१४	मंगलाचरण समाप्ति ।	

Registered:

Under Act·XXV of 1867;

(Office of the Registrar & Superintendent, Govt. Book Depot,

United Provinces, Allahabad)

Volume I. C. P. Press, 1903. pp. 192. मूल ९ टीका ७२ तक
= No. 682 Dated 1st. July 1905;

Volume II. C. P. Press, 1904. pp. 373. मूल २७ टीका १०५ तक
= No. 1468 Dated 6th. December 1904;

Volume III. C. P. Press, 1905. pp. 578. मूल ४९ टीका १९२ तक
= No. 203 Dated 16th. February 1906;

Volume IV. (1st. half)
C. P. Press, 1907. pp. 836. मूल ७९ टीका ३४३ तक
= No. 330 Dated 15th. March 1909;

Volume IV. (2nd. half)
H. C. Press, 1908. pp. 1116. मूल १२९ टीका ५१८ तक
= No· 331 Dated 15th. March 1909;

Volume V. (the last)
H. C. Press, 1909. pp. 1332. मूल. २१४ टीका ६३४ तक
= No._____ ated____________________.

श्रीसूरदास जी	८१२	दधीच जी	२४६
श्रीसुखानन्द जी	७६९	श्रीबलि जी	९१, ३०१
(२३) उपास, व्रत २ भक्त		श्रीभीष्म जी	९०
श्रीअम्बरीष जी	१२६	सुरथजी, सुधन्वा जी	२४०
श्रीरुक्मांगद	२३३	सुधनवा, सुरथ	२४०
धर्म कर्म निष्ठा, ७ भक्त		श्रीहरिश्चन्द्र जी	२३८
श्री१०८दशरथजी चक्रवर्ती	२०१	चौबीस का जोड़	२६९

इन चौबीस निष्ठाओं में जो २६९ लिखे गए उनके अतिरिक्त १३१ आगे लिखे जाते हैं।

श्रीअनन्तानन्द जी	४३५	श्रीऋचीकजी	३२२
श्रीआत्रि जी	३१७	श्रीऋभुजी	२६९
श्रीअनुसूया जी	३१७	श्रीऐल पुरूरवा	२७१
श्रीअल्ह जी	४४६	श्रीकर्मचन्द	४४६
श्रीअमूर्त्त जी	२७४	श्रीकर्दम जी	३१६
अनुगसखा (१६)	३५७	श्रीकश्यप जी	३३३
श्रीआकूती जी	२०३	श्रीकपिल जी	८६
श्रीअंगिराजी	३२५	श्रीकीर्ति जी	३५६
अंग जी	१९६	श्रीगाधि जी	२७२
श्रीइक्ष्वाकु जी	२७१	श्रीगर्ग जी	३१८
श्रीउतंक जी	२७४	श्री गौतम जी	३१९
श्रीउत्तानपाद जी	२८४	श्रीगोपाल जी	९६६
श्रीऋषिशृंग जी	३२५, ३२९	श्रीगोकुलनाथ जी	८४६

सतधनवा	२०४	कलियुगः—
संजय	२८३	पृष्ठ ३७५ से
सम्यक	२८५	मूल २८ से
श्रीसूत जी कृपालु	२००	कवित्त १०६ से
श्रीसुनीति जी	२०३	भक्त ६५०
श्रीसती जी महादेवी	२०७	वर्णित २२०
श्रीसत्यव्रत जी	२२८	मूल १८७
श्रीसगर जी	२३१	कवितटीका ५२४
संगी श्रीश्याम के १६	३५६	जोड़ ७११
श्रीहरियानन्द जी	४३३	स्यामकला
हरिदास	१२६३	(रघुबीरशरण ख़ुश्वक़्त्लाल)

छ०-रामसखा सीताशरण अवध नगर सर हंसबर ॥
प्रभु अनुराग विराग निरत-गुरु शीलमणी पद।
रामलाल गुण रूप रसिक शुचि साधु सत्यबद ॥
प्रभु बिग्रह के बिरह बर्ष दुइ अन्न न पाए।
नामनिष्ठ अति नम्र राम उत्सव धन लाए ॥
आदि अन्त, रसरङ्गमणि, भक्तिरीति निर्बाह कर।
राम सखा सीताशरण अवध नगर सर हंसबर ॥१॥
मैं श्याम! तेरि मोहनि मूरत प वारि हूं।
तुम मेरे प्राण नाथ, मैं प्यारी तुम्हारि हूं ॥

हरितलता (पुरुषोत्तम शरण मारवाड़ी)

(दो०) सबै कहत "हम राम के," सबहिं आस, पिय! तोरि।
मैं बिनवौं, पिय! तुम कहहु, "रूपकला है मोरि" ॥

(रूपकला)

श्रीभक्तमाल में कितने भक्तों के नाम हैं ?

युग	मूल	भक्त	वर्णन
सतयुग, त्रेता, द्वापर,	२७	३८०	१८०
कलि	१८७	६५०	२२०
सब का जोड़	२१४	१०३०	४००

इनमें से २६९ भक्तोंको २४ निष्ठाओं में मुन्शी तुलसीराम जी ने अपने भक्तमाल में वर्णन किया है—

निष्ठा	भक्त	निष्ठा	भक्त
		दया, अहिंसा	६
श्रृंगार, माधुर्य्य	२०	श्रवण	४
सख्य	५	प्रतिमा, अर्चा	१७
वात्सल्य	१०	लीलामूर्त्तिनिष्ठा	६
सौहार्द	५	दास्य	१६
आत्मनिवेदन, शरण	१२	सेवा	१०
महाप्रसाद	४	वैराग्य, शान्ति	१४
प्रेम	१७	ज्ञान	१३
धाम	८	कीर्त्तन	१६
नाम	७	उपवास, व्रत	२
साधुसेवा, सत्संग	२९	धर्म, कर्म	७
भेष	८	चौबीसों का जोड़	२६९
गुरु निष्ठ	१२	इस से अधिक	१३१
धर्मप्रचारक	२१	सब का जोड़ चारसौ	४००

श्री भगवत् कृपा से श्री भक्तमाल जी के इस उपक्रमणिका में, पृष्ठ २ से ८ तक 'स्वामी श्रीनाभा जी महाराज की संक्षिप्त यशावली' आरा शाहाबाद के वकील बाबू ब्रजनन्दन सहाय जी की लिखी है; और, पृष्ठ ११ से १५ तक सत्युग, त्रेता, द्वापर तथा पृष्ठ १७ से २१ तक कलियुग के भक्तों की नामावली (वा सूचीपत्र) उसी क्रमसे है जैसे श्री १०८ नाभा स्वामी और श्रीप्रियादास जी ने वर्णन किया है। पुनः पृष्ठ २७ से ३२½ तक भक्तों के नाम मुनशी तुलसीराम साहिब के भक्तप्रदीप अनुसार चौबीस निष्ठाओं में लिखे गये हैं। आगे, पृष्ठ ३९ में * तिलककार की

(* सचित्र जीवनी बाबू श्री शिवनन्दन सहाय जी की लिखी हुई, १२५ पृष्ठ, मूल्य ।।। बारह आने, पटना बाँकीपूर खड्गविलास प्रेस से मिलती है।)

संक्षिप्त जीवनी श्रीकनकभवन विहारी शरण ब्रजेन्द्र प्रसाद, M.A.,B.L., मुनसिफ़ की लिखी हुई है; और, पृष्ठ ४० से ४२ तक इस ग्रन्थ के प्रकाशक बाबू बलदेवनारायणसिंह जी वकील का कुछ जीवन वृत्तान्त संक्षिप्त दिया गया है।

सारन, छपरा, १९६६ } गोविन्ददेवनारायणशरण, B. A.

श्रीसीताराम



श्रीरूपकला

(श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसाद)

श्रीभक्तमाल-तिलककार ।

प्रमोदवन श्रीअयोध्या जी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

श्रीसीतारामाभ्यांनमः।

श्रीहनुमतेनमः।

श्रीभक्तमाल के तिलककार की संक्षिप्त जीवनी।

स्वामी श्री १०८ रामचरणदास महाराज जी के शिष्य, श्रीवास्तवकायस्थ मुन्शी तपस्वीराम जी के आत्मज, सारन छपरा गवन्मैंट स्कूल के पढ़े, श्रीसीताराम शरण भगवान प्रसाद जी का विवाह संवत १९१४ (१८५७ई०) में हुआ, और ये सन १८६३ ईसवी में ३० रु० पर पटने के सब इन्स्पेक्टर-अफ़-स्कूल्स नियत हुए।

२. शाहाबाद, चम्पारन, सारन, मुज़फ़्फ़रपूर, दर्भंगा, इत्यादि जिलों में फिरने के अनन्तर, ये पूर्निया नार्मल स्कूल के हेडमास्टर ८०रु० पर नियत हुए; १८६७ में १०० रु० की डेपुटि इन्स्पेकटरी का पद पाकर मुँगेर भेजे गए; जहां प्रायः बारह वर्ष रहे; सन१८७८से २०० रु० वेतन पानेलगे, और १८८१ में भागलपूर भेजे गए।

३. सन १८८४ में श्रीसीताराम कृपा से आपकी उन्नति ३००रु०मासिक पर हुई। १८८६ में आप फिर पटने आए।

४. सम्वत १९४२ (१८८५ई०) में आपके पिता जी का बैकुंठवास हुवा,और१९४७(१८९०ई)मेंआपकी स्त्री का भी।

५. ३० (तीस) बर्ष से अधिक गवन्मैंट की नोकरी कर, सं०१९५० (१८९३ई०) में काम छोड़,श्रीसीतारामकृपा से सीधे श्रीअयोध्या जी पहुँच, आपने वैराग्य धारण किया।

सं० १९५२ (१८९५ई०) में आपकी माताजी बैकुंठवासी हुईं

६. आप सन (१८९३ ई०) से श्री सीतारामकृपा का धन्यवाद गुणवाद गाते गवाते हुए, बराबर श्रीसरयू अयोध्याजी के शरण में बिराज रहे हैं॥

७. इस ग्रन्थ के प्रकाशक की भी कुछ थोड़ी सी जीवनी हम अपने पाठकों को सुनाए देते हैं—

८. श्री सीतामढ़ी बुलाक़ीपूर जिला मुज़फ़्फ़रपूर निवासी, ऐठाना कायस्थ बाबू मनोरथलाल जी के ज्येष्ठ पुत्र बाबूश्रीबलदेव नारायणसिंह जी का जन्म सम्वत १९१७ के फाल्गुण में हुआ। आपका विवाह मौज़े माली एलाके शिवहर जिला मुजफ्फरपूर के बाबू हनुमानप्रकाश सिंह जी की कन्या से हुआ। आपने मुजफ्फरपूर स्कूल से सन १८८२ में एनट्रेन्स पास किया।

९. मुजफ्फरपूर एकसट्रा सब जज की कचहरी में, मुहर्रिरी के अनन्तर, पेशकारी पाई। सन १८८३ में गया अडिश्नल सबजज के सरिश्तदार बहाल हुए १८८४ में वकालत की परीक्षा पास करके, १८८६ में नोकरी छोड़, तारीख ६ अगस्त से गया जी में वकालत करते हैं।

१०. गया जी में भी आपका एक उमदा मकान और बाटिका है आपके पुत्र नहीं परन्तु दो लड़कियां हैं। श्री रामकृपा से एक कन्या के पुत्र है जिसका नाम चिरंजीवी जानकी रघुनाथ प्रसाद है; इस कुमार की अवस्था अभी चार वर्ष की है।

११. आपके सहोद्र भ्राता बाबू श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह B. L. कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील, आप से दो ढाई बर्ष छोटे हैं; संस्कृत अच्छी जानते हैं; आपके चार लड़के हैं और एक कन्या; दो बेटे कलकत्ते में पढ़ रहे हैं।

१२. आपके भानजे बाबू लालबहादुर जी गयाजी में मुहर्रिर हैं और बाबू नरेन्द्रनारायण जी, बड़े सुशील, कलकत्ते के एक प्रेस में हैं। दोनों वैष्णव हैं और इङ्गरेज़ी पढ़े हैं। आपके फुफेरे भाई लाला अच्चुतानन्द जी चारोधाम से हो आके श्रीअयोध्या निवास करते हैं। आपके सरबेटे बाबू श्रीसियदेवनारायण सिंह जी, ज़मीदार, बड़े भक्त, भजनानन्द, रसिक और प्रेमी हैं, एन्ट्रेन्स तक आपने इंग्रेज़ी भी पढ़ी है, जिनके भाई बाबू उद्धव जी गया जी में मुनशी हैं, और ये सब महाशय वैष्णव हैं। आपके भांजे बाबू महेन्द्र किशोर जी कलकत्ते में पढ़ते हैं। आपके एक संबन्धी बाबू रामगोविन्दशरण जी बड़े भगवद्भक्त, तिर्हुत में एक ट्रेनिंग स्कूलके हेड्मास्टर हैं। आपके जामात का नाम बाबू बासुदेव नारायण सिंह जी है। आपके भांजे बाबू हरिश्चन्द्र जी गयाजी ही में पढ़ते हैं।

१३. बाबू बलदेव नारायण सिंह जी, महात्मा श्रीरामनारायण सुकुल जी के शिष्य श्रीरामानन्दीय वैष्णव हैं; आपने तीर्थाटन भी किया है।

१४. बाबू बलदेवनारायणसिंह जी बड़े धर्मात्मा हैं और श्रीअयोध्याजी प्रति संवत्सर दो बार अवश्य आते हैं।

१५. श्रीअयोध्याजी प्रमोदबन में आपका एक सुन्दर "रूपकलाकुंज" नामक भवन है। ऐसे विवेकी, धर्म्मात्मा, उदार, प्रतापी और भगवद्भक्त की माता की प्रशंसा लिखने की आवश्यकता ही क्या; आपकी माताजी, जो चारो धाम से हो आई हैं, अब श्रीअयोध्या बास करती हैं। बड़ी बुद्धिमान तथा पुण्यात्मा हैं।

१६. भगवद्भक्तप्रिय ग्रन्थ इस सटीक सतिलकश्रीभक्तमाल के प्रकाशक आपही (श्रीबाबूबलदेवनारायणसिंह जी) हैं।

१७. सद्ग्रन्थों के इकट्ठे करने में आप की भारी श्रद्धा रहती है। श्रीसीतारामजी आपके सकल मनोरथ सफल करें॥

१८. जय जय जय जगजननी श्री जानकी, जय जय जगतपिता श्री रघुवंशमणि, जय युगल सर्कार की! आप से इस दीन बालक की प्रार्थना है कि आपके भक्तों का तथा आपका चरित सदा सप्रेम गाया करूं; यही बर दीजिये, और निरन्तर कृपा रखिये॥

क० वि० श० ब्रजेन्द्रप्रसाद (M. A., B. L.)

ऐक्टिङ्ग मुन्सिफ, फर्स्ट कोर्ट, कृष्णगंज, पूर्नियां।

॥ श्रीः ॥

सांख्यसार ।

श्रीजानकीवल्लभाय नमः ।

(दो०) अद्भुत रचना राम की, नर तन अचरज गेह ।
खेल तत्त्व बत्तीस[1] का, राम रचित नर देह ॥१॥
रचना रुचिर विचारि हिय, उपजत सहज सनेह ।
अन्तर्यामी राम लखि, कनकलता करु नेह ॥ २ ॥

बत्तिस की है बनी यह काया, अन्तर्यामी[2], आत्मा[3], माया[4] ॥
अहंकार, बुद्धि, मन, चित्त । चारो अन्तः करण हैं मित्त ॥
प्राण, अपान, उदान, समान । पंचम व्यान, पाँच हैं प्रान ॥
पंच स्थूल तत्त्व सुन तू । शून्य, समीर, तेज, जल, भू ॥
पंच कर्म इन्द्री के नाँव । हस्त, उपस्थ, गुदा, मुँह, पांव॥
पंच ज्ञान इन्द्री पहिचान । श्रोत्र, त्वचा, दृग, रसना, घ्रान॥
विषय पाँच कीन्हे जग अन्ध । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ॥
जीव नित्य, तुम जानो इसको । तुम मरते नहिं, मानो इसको॥
जीव देह दोनो दो कैसे । पक्षी पिंजड़ा देखिय जैसे ॥
पक्षी पिंजड़े का उड़ जावै । देह अनित्य नाश को पावै॥

---

१ तत्वों की गिनती में २२ से ३२ तक का भेद हुवा करता है, इस न्यूनाधिकता का कारण एक तत्व को दूसरे तत्व के भीतर गिन लेना है ।

२ अन्तर्यामी = पुरुषोत्तम, परब्रह्म, परमात्मा, परम तत्व, हृदयस्थहरि ।

३ आत्मा = पुरुष, जीवात्मा, हंस ।

४ माया = प्रकृति ।

अधम शरीर नहीं है अपना । सतहरिभजनजगतसबसपना ॥
जरै मरै नहिं जीव, तरै तब । सियापियपद रति होय हृदयजब।
(दो०) काल पुकारत सीस पर, जग जीवन दिन चार ।
कनकलता संसार महँ, राम भजन है सार ॥१॥
काम क्रोध मद मोह तजि, जो न भजै श्रीराम ।
पुनि पुनि आवै जाय जग, सो न लहै विश्राम ॥२॥
सकल सुखद भवभयहरण, सिय पिय राम सनेह ।
जाके हिय नहिं राम रति, ताके सिर पर खेह ॥३॥

श्रीअयोध्या जी, १९६६ कनकलता (S. K. D. N. Sinha)

(ग़ज़ल्)

लगी है लगन तुम से आवो सियावर ।
लगी आग तन की बुझावो सियावर ॥ १ ॥
समाई है आँखों में सूरत सलोनी ।
झलक अपनी मुझको दिखावो सियावर ॥ २ ॥
फ़िदा तेगे़ अबरू प है जान मेरी ।
शिकार् अपना मुझको बनावो सियावर ॥ ३ ॥
चलावो कोई तीर तिरछी नज़र की ।
कोई तेज़ नशतर लगावो सियावर ॥ ४ ॥
कहीं चश्म बद लग न जाये यह डर है ।
मेरे दिल के बाहर न जावो सियावर ॥ ५ ॥
शजर बे समर हूं तमन्ना है फल की ।
पिया प्रेम का फल लगावो सियावर ॥ ६ ॥

तुम्हारी कनक तुमसे यह माँगती है ।
मुझे अपनी जोगिन बनावो सियावर ॥७॥ (कनकलता)

॥ श्री सीतारामचन्द्राभ्यान्नमः ॥

(दो०) नमो नमो श्री जानकी, नमो नमो श्री राम।
कमलाअलि वर माँगती, युगल प्रेम निःकाम ॥
(कमलाअली)

आये सखि सावन अति मन भावन बिनु पिया मोहि ना सोहात, आली । गरज घटा धुनि मोर पपिहरा की सुनि सुनि जियरा डेरात, आली । चलत पवन रिमि झिमि बुंद बरसत परसत हीं जरे गात, आली । कोकिला की कूक सुनि उठत है हूक हिय छन इक कलप बितात, गोप्य अली बिरहिनि अति ब्याकुल ताहूपै ना पिय आत, आली ॥
(गोप्यअली)

(दो०)बनप्रमोद बिहरैं दोउ, राम सिया सुखधाम ।
लता ओट जब होहिं ललि, इत उत खोजत राम १॥
ललि पद अंकित अवनि लखि, राम रसिक सिर मौर ।
प्रिया चरण रज जानि के, लूटत ठौरहि ठौर ॥ २ ॥
जनकलली के पद कमल, करहिं जाइ जहँ ऐन ।
बिकल तहां उठि धावहीं, श्रीरघुपति के नैन ॥३॥
जय जानकि मम स्वामिनी, जय स्वामी सियनाह ।
सिय सहचरि नित चाहती, लली लाल की चाह॥४॥
(सियसहचरी)

॥ श्रीः ॥

नमो प्रीतम पियारे प्राण वल्लभ ! ।
दरस अपना दिखाओ जो है दुर्लभ ॥ १ ॥
बिनय करता हुं अतिशय प्राण प्यारे ।
लगी है आस चरणों में तुम्हारे ॥ २ ॥
तुम्हारे बिन बहुत दिन प्यारे ! बीते ।
श्रवण लोचन सफल हों अब तुम्ही ते ॥ ३ ॥
दरस तव प्राण वल्लभ ! मैं जो पाऊं ।
कमल चरणों का मधुकर होहि जाऊं ॥ ४ ॥
चरणरज से कृतारथ सीस करके ।
रहूं मैं मोद से निज हीय भर के ॥ ५ ॥
धरे हाथों प श्रीपंकज चरण को ।
सदा देखा करूं शोभा सदन को ॥ ६ ॥
कभी हँस के न बोले तुम सियावर ! ।
कृपाकर ! दो य सुख मुझको दयाकर ॥ ७ ॥
मुझे अपनी झलक प्यारे ! दिखाओ ।
बचन मीठे मुझे अपने सुनाओ ॥ ८ ॥
सदा " राजेन्द्र " सियपिय ध्यान लाओ ।
सुयश श्री प्राणपति के नित्य गाओ ॥ ९ ॥

माधुर्य्यकला (श्री जानकी प्रपन्न राजेन्द्र शरण)

मैं चेरि तेरी तेरा दिया सब । गुण गा सकूं तेरा मैं पिया कब ॥
आँखों में मेरी जगह है तेरी । चितवन तेरी कामना है मेरी ॥

दो० । श्रीजानकि पदकंज सखि, करहिं जासु उर ऐन ।
बिनु प्रयास तेहिपर द्रवहिं, रघुपति राजिव नैन ॥

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद